विपाशा

हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका

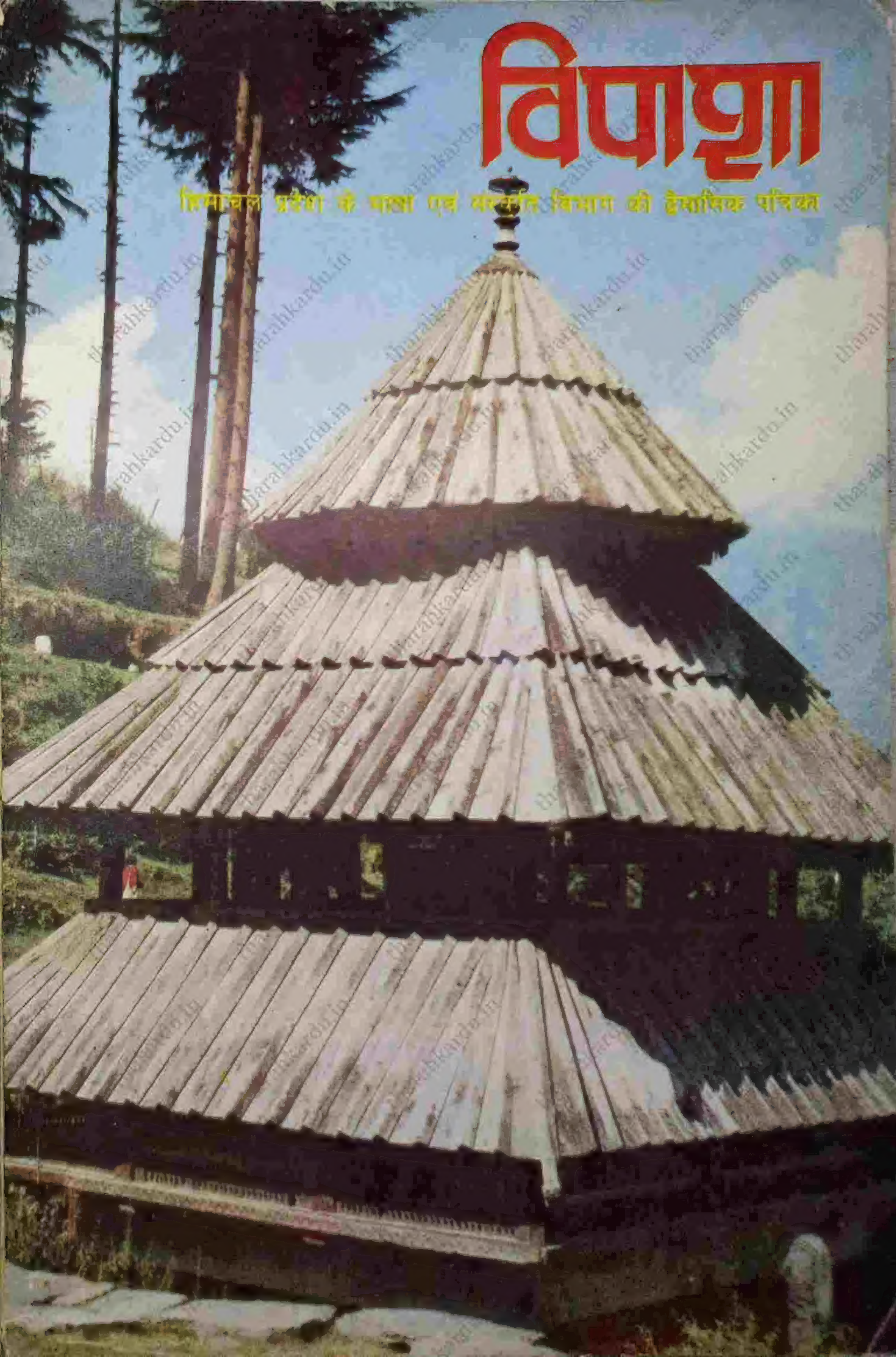

आवरण

मुख पृष्ठ: त्रिपुरा सुंदरी मंदिर, नग्गर (कुल्लू)

ऊपर का चित्र: सनत कुमार चटर्जी की कृति (संदर्भ लेख में)

अन्तिम पृष्ठ: सराहन (रामपुर) के मंदिर की काष्ठ कला

छाया: हाकम शर्मा

विपाशा

साहित्य, संस्कृति एवं कला की द्वैमासिकी
वर्ष-3, अंक-16, सितम्बर-अक्तूबर, 1987

मुख्य संपादक
श्रीनिवास जोशी
निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, हि० प्र०

संपादक
तुलसी रमण

संपर्क : संपादक-विपाशा, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि० प्र०
त्रिशूल, शिमला-171003 दूरभाष : 3669, 6846, 4614

वार्षिक शुल्क : दस रुपये, एक प्रति : दो रुपये

क्रम

3 पाठकीय

5 संपादकीय

7 महादेवी स्मरण : कविता चयन

साक्षात्कार

10 भाव-शक्ति के बिना विचार-शक्ति अधूरी है : **डॉ०रामविलास शर्मा से सुधीररंजन सिंह** की बातचीत

कहानी

28 घाल्लू : **नरेश पंडित**

36 ओ हरामजादे : **वीरेन्द्र जैन**

देशान्तर

39 मां का दूध (कोरियाई कहानी) : **पैक के जू**

कविता

44 **जोजफ ब्रादस्की** की कविताएं

47 मैं और वह : **जिया सिद्दीकी**

51 तीन कविताएं : **केशव**

55 चार कविताएं : **लाल्टू**

60 दो कविताएं : **आनन्द**

64 पांच कविताएं : **मोठेश निर्मोही**

समीक्षा

66 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी और अमिताभ की कविताएं : **श्रीनिवास श्रीकांत**

70 पनघट और प्रेरणागीत : **फूलचंद मानव**

लोक संस्कृति

72 विपाशा के आर-पार : **मौलूराम ठाकुर**

कला

80 अनुशासन के आयाम : **हरिश्चन्द्र राय**

84 कला-विधाओं के विविध फलक : **कलाधर**

आयोजन

87 तृतीय नाट्य उत्सव—एक रपट : **राकेश वत्स**

91 गुलेरी जयन्ती समारोह-नाहन : **राजेन्द्र राजन**

92 असरदार रहा ठुमरी का जादू : **राजेन्द्ररंजन तिवारी**

94 राजभाषा पुरस्कार समारोह, 1987

95 राज्य स्तरीय हिन्दी दिवस

96 उषा-अनिरुद्ध चित्र-सीरीज कथा

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, इनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

पाठकीय

अंक चौदह

प्रभुदयाल चौहान (कार्यालय विकास खण्ड अधिकारी, आनी, जिला, कुल्लू हि० प्र०)

'विपाशा' में हिंदी साहित्य से संबंधित सामग्री ज्ञानवर्धक रहती है। यह पत्रिका हिमाचल की संस्कृति को पाठकों के समक्ष लाने का भी पूरा प्रयत्न कर रही है। यदि आप मुखपृष्ठों की तरह पत्रिका के भीतरी पृष्ठों में भी हिमाचल की संस्कृति से संबंधित कुछ चित्र छापें तो इसमें और भी अधिक अच्छा रहेगा। नये कलाकारों को इस पत्रिका के माध्यम से अपनी प्रतिभा को उजागर करने का अच्छा अवसर मिल सकता है।

विजय गौड़ (धर्मपुर, देहरादून)

'विपाशा' अंक 15 में दया पवार की मराठी कहानी 'पंख' काफी अच्छी लगी। दलित साहित्य की स्पष्ट झलक इस कहानी में है। रूसी कहानी 'आशा' बहुत भायी। नायिका की तड़प को इसमें बखूबी प्रस्तुत किया है। कहानी के अनुवादक बधाई के पात्र हैं। 'उसका खुदा' भी अच्छी लगी और कविताओं में तो चयन करना ही मुश्किल है।

डा० लेखराम शास्त्री, (संस्कृत कालेज सोलन-173212)

संस्कृत दिवस समारोह : सोलन का सर्वांगीण एवं तलस्पर्शी चित्र अच्छा लगा। लेखक बधाई के पात्र हैं।

अर्पणा रूहेला (एपल हाउस, नज़दीक टिम्बर हाउस, सर्कुलर रोड शिमला)

'जन संप्रेषण और साहित्य का सिमटता संसार', देवेन्द्र इस्सर द्वारा इस सार्थक बहस पर बधाई। विपाशा का मई-जून अंक अचानक देखा। मेघदूत, कामायनी और ओडिसी की सुन्दरता वे क्या जाने जिन्होंने इनका नाम ही न सुना हो। इनको जानने, सुनने और देखने, समझने वाली पीढ़ी ही ये विरासत अपनी संतान को दे सकती है। परिष्कृत रुचि वाले साहित्य के रसियों की संख्या कम अवश्य है पर है जरूर। 'विपाशा' के हर अंक को बेहतर से बेहतर देखने की इच्छा है।

डा० ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' (जनकपुरी, नई दिल्ली-58)

अंक चौदह पढ़ा। पत्रिका अत्यन्त सुरुचिपूर्ण है। साज-सज्जा और वस्तु प्रस्तुति दोनों स्तरों पर। स्तरीय सामग्री का ऐसा स्तरीय प्रकाशन प्रायः सरकारी एजेंसियों में खासतौर पर

दुर्लभ है। इस दृष्टि से यह अपनी अलग पहचान बरकरार रखेगी ऐसी आशा है।

पत्रिका रत्न वैविध्य संजोये है। कहानी, कविता, साक्षात्कार समीक्षा, बहस वाले लेख, इतर साहित्य के हिंदी अनुवाद, साहित्यिक-सांस्कृतिक आयोजनों की रपटें तथा कला-साधकों का परिचय और उनकी कृतियों का विश्लेषण इसको संपूर्ण पत्रिका बनाते हैं। हर मिजाज और रुचि के पाठक इससे तृप्ति पा सकते हैं।

जर्मन से अनूदित कहानी अत्यन्त मार्मिक है। महायुद्ध काल की मानवीय जड़ता का एक साफ सुथरा आईना। अज्ञेय पर संकलित सामग्री निश्चय ही विशेष संग्रहणीय है। देवेन्द्र इस्सर का लेख समसामयिक परिवेश में बुद्धिजीवी की पीड़ा को उभारता है।

प्रभातकुमार (गुलिस्तान-ए साथी नाहन-173001)

'विपाशा' का जनवरी-फरवरी-87 अंक पढ़ा। इतनी कविताएं पढ़कर लुत्फ आ गया।

पृष्ठ 96 पर छपी रपट में छोटे से शहर में हुए कवि सम्मेलन की इतनी बृहद रपट बढ़कर अच्छा लगा पर जिन सज्जन ने यह रिपोर्ट भेजी है उनकी याददाश्त शायद मात खा गई। उन्हें नाहन के कवि श्री कैलाश भारद्वाज का नाम याद नहीं रहा। यहां तक कि चन्द नाम तो ऐसे भेजे गए जिन्हें पहली या दूसरी बार कविता पाठ करते देखा गया। फिर इतने जाने-पहचाने हस्ताक्षर कैसे रह गए।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्यवहार या तो किसी नये आदमी से हो गया या फिर जान-बूझकर किया गया है जो कि खेदजनक है।

डा० दीनानाथ 'शरण' (दरियापुर गोला बांकीपुर पटना-800004)

आपकी साफ, सुन्दर पत्रिका 'विपाशा' का मई-जून 1987 अंक लेकर पढ़ा। मुझे पता ही न था कि हि० प्र० के भाषा एवं संस्कृति विभाग से इतनी बढ़िया पत्रिका भी निकला करती है।

प्रस्तुत अंक में अज्ञेय जी पर अच्छी सामग्री है।

लक्ष्मीकांत शर्मा (अजमेर)

विपाशा की मंथर गति को गतिमान बनाएं। अज्ञेय का चित्र तथा उनसे सम्बन्धित सामग्री सूझ-बूझ का परिचय देती है। साहित्यिक पत्रिकाओं में विपाशा अलग व्यक्तित्व की अधिकारिणी है। समीक्षा स्तम्भ भी सुविचारित एवं महत्वपूर्ण होता है।

संपादकीय

जीवन और सौंदर्य की आकांक्षा

कंटकों की सेज जिसकी आंसुओं का ताज
सुभग ! हंस उठ, उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज
बीती रजनि प्यारे जाग !

छायावाद की प्रतिनिधि कवि महादेवी जी का स्वर हिन्दी साहित्य-जगत् में गूंजता रहेगा। उनकी कविता केवल पीड़ा और पलायन की ही कविता नहीं है बल्कि उसमें 'जीवन और सौन्दर्य के प्रति आकांक्षा' भी साथ चलती है। 'हठीले मेरे प्राण छोटे' और 'कैसे मिलूं अभिमानिनी मैं' जैसी उक्तियों में तो एक तरह की दृढ़ता के दर्शन होते हैं। मानवता से प्रेम और पीड़ितों के प्रति सहानुभूति के फलस्वरूप ही इन्होंने पीड़ित समाज के मर्मस्पर्शी चित्र उकेरे हैं।

दीर्घकालीन रूढ़ियों, अंधविश्वासों और सामंती संस्कारों से आक्रान्त समाज में नारी जाति जिन यातनाओं से गुजरती रही है वह निश्चय ही भयावह है। ऐसी स्थिति में विद्रोह की भावना बहुत बार आत्महत्य तक में परिवर्तित हो जाती है। पुरुष प्रधान समाज में सामंती संस्कारों के खिलाफ महादेवी का स्वर नारी-मुक्ति चेतना के मूल में रणकता रहेगा। श्रद्धांजलि !

□

हिन्दी साहित्य आलोचना की परम्परा में आचार्य शुक्ल के बाद डॉ. रामविलास शर्मा ही एक ऐसे आलोचक, चिंतक एवं सर्जक हैं जिन्होंने शुक्ल जी के साहित्य-दर्शन के 'लोक मंगल' वाले दृष्टिकोण को 'मार्क्सवादी दर्शन की वैज्ञानिक पीठिका प्रदान कर उसे सामाजिक परिवर्तन की दिशा में विकसित किया है। साहित्यिक संस्कृति, लोक संस्कृति, समाज और भाषा से जुड़े सवालों को इन्होंने वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक दृष्टि से हल किया है—एक तरह से दिशा दी है। कई साहित्यालोचकों की मान्यताओं और अन्तर्विरोधों को भी डॉ० शर्मा ने खोलकर सामने रखा है। भारतीय

तथा पाश्चात्य आलोचना पद्धतियों का मन्थन करके उनमें से जो कुछ ग्रहण करने योग्य था उसे एक सुदृढ़ धरातल प्रदान कर अपनी ऐसी आलोचना शैली विकसित की है जिसमें वह विचार मात्र के अंधभक्त नहीं दीखते बल्कि एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण बना रहता है। प्रगतिशील आलोचना के प्रमुख स्तम्भ के रूप में रामविलास जी की भूमिका असंदिग्ध है। इस अंक में उनसे साक्षात्कार निःसंदेह महत्त्वपूर्ण है।

□

नोबल पुरस्कार से सम्मानित कवि जोजफ ब्रादस्की की कविताओं का अनुवाद तथा पांच हिन्दी कवियों की कविताएं और एक कोरियाई कहानी को मिलाकर कुल तीन कहानियां, इस अंक में शामिल हैं। कलाकार भनत कुमार चटर्जी के कृतित्व परिचय के साथ कुछ कला-प्रदर्शनियों पर भी सामग्री दी गयी है।

विभाग द्वारा गत तीन वर्षों से आयोजित किया जा रहा नाटक-उत्सव इधर रंगमंच के प्रमुख आकर्षण के रूप में उभर कर सामने आया है। 'तृतीय नाटक उत्सव' की रपट तथा कुछ अन्य आयोजनों के विवरण भी दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त समीक्षा एवं संस्कृति सम्बन्धी विविध सामग्री भी प्रस्तुत है।

आगामी अंक में डा. रमेश कुन्तल मेघ से डा. ओम अवस्थी तथा राकेश वत्स की लम्बी बातचीत।

कविता चयन

अन्तिम मेला

सजल है कितना सवेरा ।
गहन तम में जो कथा इसकी न भूला,
अश्रु उस नभ के, चढ़ा शिर फूल फूला
झूम झुक-झुक कह रहा हर श्वास तेरा

राख से अंगारे-तारे झर चले हैं,
धूम बन्दी-रंग के निर्झर खुले हैं,
खलेता है पंख रूपों में अंधेरा !

कल्पना निज देख कर साकार होते,
और उसमें प्राण का संचार होते,
सो गया रख तूलिका दीपक चितेरा !

अलस पलकों से पता अपना मिटा कर,
मृदुल तिनको में व्यथा अपनी छिपा कर,
नयन छोड़े स्वप्न ने, खग ने बसेरा !

ले उषा ने किरण-अक्षत हास रोली,
रात अंकों से पराजय-रेख धो ली,
राग ने फिर साँस का संसार घेरा !

जीवन

मेरे हँसते अधर नहीं, जग—
की आँसू-लड़ियां देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत,
मुर्झाई कलियाँ देखो !

हँस देता नव इन्द्रधनुष की स्मित में घन मिटता-मिटता;
रंग जाता है विश्व राग से निष्फल दिन ढलता-ढलता;
कर जाता संसार सुरभिमय एक सुमन झरता-झरता;
भर जाता आलोक तिमिर में लघु दीपक बुझता-बुझता;

मिटनेवालों की हे निष्ठुर !
बेसुध रंगरलियां देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत,
मुर्झाई कलियाँ देखो !

गल जाता लघु बीज असंख्यक नश्वर बीज बनाने को;
तजता पल्लव वृन्त पतन के हेतु नये विकसाने को;
मिटता लघु पल प्रिय देखो कितने युग कल्प मिटाने को !
भूल गया जग भूल विपुल भूलोंमय सृष्टि रचाने को;

मेरे बन्धन आज नहीं प्रिय,
संसृति की कड़ियाँ देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत,
मुर्झाई कलियाँ देखो !

श्वासें कहतीं 'आता प्रिय' निश्वास बताते वह जाता;
आँखों न समझा अनजाना उर कहता चिर यह नाता;
सुधि से सुन 'वह स्वप्न सजीला क्षण-क्षण नूतन बन जाता;
दुख उलझन में राह न पाता सुख दृगजल में बह जाता;

मुझ में हो तो आज तुम्हीं 'मैं'
बन दुख की घड़ियाँ देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत,
बिखरी पंखुरियाँ देखो !

बीन भी हूं

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं !
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में;
प्रथम जाग्रति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में;
प्रलय में मेरा पता, पद चिह्न जीवन में;
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में;
कूल भी हूं; कूलहीन प्रवाहिनी भी हूं !

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूं;
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूं;
फूल को उर में छुपाए विकल बुलबुल हूं;
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ;
दूर तुमसे हूँ, अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !

आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के;
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पावड़े पल के;
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में;
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूँ, सुनहली दामिनी भी हूँ !

नाश भी हूँ, मैं अनन्त विकास का क्रम भी;
त्यागका दिन भी, चरम आसक्ति का तमभी;
तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी;
पात्रभी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूं और स्मित की चांदनी भी हूँ !

साक्षात्कार

भावशक्ति के बिना विचार शक्ति अधूरी है

□ डा० रामविलास शर्मा से सुधीर रंजन सिंह की बातचीत

डा० रामविलास शर्मा खुलकर मिलने और बातचीत करने के लिए प्रसिद्ध हैं। मैं साक्षात्कार के लिए समय लेने के उद्देश्य से 27 मार्च' 87 को उनसे मिलने, उनके नए निवास सी-358, विकासपुरी गया। मेरे साथ मेरे मित्र रमण प्रसाद सिन्हा थे। यह पहला अवसर था जब हम व्यक्तिगत रूप से रामविलास जी से मिलने जा रहे थे। शाम के पांच बज रहे थे। धूप अभी बहुत तीखी थी। हमें 'कॉलबेल' का बटन दबाने में थोड़ा संकोच हो रहा था। लेकिन रामविलास जी ने स्नेह-भाव से हमें अपने कमरे में बिठाया कि मानों वे हमारी ही प्रतीक्षा में रहे हों। जब मैंने कहा कि हम आपसे साक्षात्कार के लिए समय लेने आए हैं तो उनका उत्तर था—'पूछिए मैं खाली हूं।'

उस दिन 'साक्षात्कार' तो संभव नहीं हुआ, फिर भी रामविलास जी ने हमसे अनेक विषयों पर खुले भाव से बातचीत की। सबसे पहले बात इसी विषय से शुरू हुई कि आजकल वे क्या लिख-पढ़ रहे हैं। 'मार्क्स और पिछड़े हुए समाज' के बाद उन्होंने अपना ध्यान भारतीय दर्शन की सामाजिक पृष्ठभूमि पर केन्द्रित किया है। इस विषय पर उन्होंने पूरे विस्तार में जाकर बताया। वे बताते जा रहे थे और बीच-बीच में यही लग रहा था कि उन्हें रोक दूं, कि अभी ही सब कह जाएंगे तो साक्षात्कार के लिए क्या बचेगा! लेकिन आज जब यह 'साक्षात्कार' सम्पन्न हो गया है तो मैं सोच रहा हूं कि एक विषय पर बात चाहे जितनी बार हो चुकी हो रामविलास जी हर बार उसे उसी गम्भीरता से लेते हैं और हमें हर बार उनकी बात में नयापन दिखाई पड़ता है।

छह साढ़े छह बजे के आसपास रामविलास जी संध्या भ्रमण के लिए निकले। यह उनकी दिनचर्या है। रास्ते भर साहित्य पर रोचक प्रसंग आते रहे। कैसे निराला उन्हें अंग्रेजी कविता समझाने बैठ जाते थे; शैली प्लेतो से प्रभावित क्यों था, आदि। लौटकर दरवाजे के बाहर से ही हमने आज्ञा चाही तो उन्होंने कहा...'अभी रुक सकते हो, मैं खाली हूं।' इस पर हमें क्या एतराज हो सकता था! तब सात बज रहे होंगे और उसके बाद भी हम लगभग डेढ़ घंटे तक ज्ञान-लाभ करते रहे। निराला, प्रसाद, शुक्ल जी, शैली, भाषा-विज्ञान, कविता की रचना-प्रक्रिया आदि अनेक विषय आए और हम लगातार यही सोचते रहे कि इससे अच्छा 'इन्टरव्यू' और क्या हो सकता है।

उस दिन के बाद मैं 24 अप्रैल को रामविलास जी से मिला, लेकिन साक्षात्कार के लिए नहीं। तब भी रमण जी मेरे साथ थे और हम लगभग दो घंटे तक रामविलास जी से बातचीत

करते रहे। मैंने साक्षात्कार के प्रश्नों का प्रारूप बताया तो रामविलास जी ने आपत्ति की कि मुझसे सम्बन्धित दूसरों की मान्यताओं और आलोचना को लेकर प्रश्न नहीं होने चाहिए। उनका कहना था कि हाल फिलहाल उन पर जो लिखा गया है, उसे उन्होंने अभी तक पढ़ा नहीं है; फुरसत मिलेगी तो पढ़ेंगे और उस पर लिखेंगे भी।

इस बीच में कई व्यक्तिगत परेशानियों का शिकार रहा, इसलिए इस साक्षात्कार में अनपेक्षित विलम्ब हुआ। और इस तरह, आज 4 अगस्त को यह साक्षात्कार सम्भव हो पाया। इस साक्षात्कार में मेरे मित्र रमण प्रसाद जी की भी उपस्थिति रही।

यह साक्षात्कार केवल साक्षात्कार नहीं है। इसमें साक्षातकार व्याख्यान, भाषण, और बातचीत, सभी मौजूद हैं। वैसे तो रामविलास जी सभी विषयों पर मुक्तभाव से बोलते हैं, लेकिन जिस विषय पर वे काम कर रहे होते हैं उस पर और भी विस्तार से—अपनी एक-एक मान्यता को सोदाहरण स्पष्ट करते हुए। प्रमाण, साक्षात्कार के पहले प्रश्न का उत्तर है। प्रश्न था कि अभी आप क्या लिख-पढ़ रहे हैं ? इसका उत्तर हस्त लिखित 20 से भी अधिक पृष्ठों में है। इसे अलग से व्याख्यान अथवा लेख के रूप में प्रकाशित करने की योजना है। शीर्षक होगा—'इतिहास और दर्शन की समस्याएं।'

यहां साक्षात्कार दूसरे प्रश्न से प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रश्न : हाल के वर्षों में आपने सर्वाधिक कार्य इतिहास और दर्शन की समस्याओं पर किया है और शायद अभी भी इसी क्षेत्र में सक्रिय हैं 'भारत में अंग्रेजी राज' और 'मार्क्स और पिछड़े हुए समाज' को पढ़ते हुए मुझे लगा है कि इनसे पहले आपने भाषा-विज्ञान और आधुनिक साहित्य के इतिहास पर जो काम किया है, उसी में से सारे सवाल उठे हैं और वे फिर इकट्ठे इतिहास और दर्शन के सवाल बन गए हैं। इन पुस्तकों की बहुत-सी स्थापनाएं भी पूर्व-पुस्तकों की हैं। तो क्या मानकर चलना चाहिए कि इतिहास और दर्शन सम्बन्धी आपका लेखन इतिहास और भाषा की समस्याओं का ही अंग है ?

उत्तर : साहित्य का इतिहास, भाषाओं का इतिहास और समाज का इतिहास—ये तीन जुड़े हुए हैं। ये बहुत दिनों से मेरे दिमाग में एक साथ जुड़े हुए रहे हैं। कब किस पर मैंने ज्यादा ध्यान दिया है, वो अलग मंजिलें हैं। इनमें से दर्शनशास्त्र छूटा हुआ था। 'मार्क्स और पिछड़े हुए समाज' में मैंने एक अध्याय हेगेल के इतिहास-दर्शन पर लिखा और उसमें चलते-चलते हेगेल के द्वन्द्ववाद पर लिखा। यह पुस्तक भी इतिहास पर आधृत है, लेकिन फिर भी दर्शनशास्त्र इसमें है। एक किताब और आगे लिखने का विचार है, वह दर्शनशास्त्र पर होगी।

प्रश्न : क्या नाम होगा उसका ?

उत्तर : उसका नाम मैंने रखा 'भारतीय दर्शन की भूमिका'। उसमें यथार्थवाद की व्याख्या होगी। भौतिकवाद थोड़ा संकुचित शब्द है, यथार्थवाद में और भी चीजें आ जाती हैं; तो हमने एक बड़ा शब्द लिया है। यथार्थवाद का विकास यूरोप में कैसे हुआ और उसी तरह, भाववाद—इसका विकास यहां कैसे हुआ और वहां कैसे हुआ ! इसके बाद एक महत्वपूर्ण धारा है—शून्यवाद नागार्जुन का शून्यवाद। शून्यवाद की भी एक रचनात्मक भूमिका है। वैसे तो यह बहुत

निषेधात्मक मालूम होता है, लेकिन बहुत-सी कमजोरियां हैं यथार्थवाद की। ये बताकर ही आगे के विकास के लिए रास्ता साफ होता है। भारत में नागार्जुन और ब्रिटेन में ह्यूम, इनकी तर्क पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन बड़ा दिलचस्प होगा। फिर प्रत्यक्षवाद (इम्परीसिज्म) है, मनुष्य के विचार अनुभव से पैदा होते हैं, जो प्रत्यक्ष अनुभव है वही वास्तविक अनुभव है—ये बहुत कट्टरता के साथ चार्वाक ने कहा। इससे अलग रहकर भी लोगों ने कहा है। अनुमान को भी ज्ञानार्जन में महत्व दिया गया। किन्तु मूल बात यह है कि मनुष्य का अनुभव पहले है—इंद्रिय बोध को तुम यह कहकर कि यह सब भ्रम है काट नहीं सकते। यह जो भारत का प्रत्यक्षवाद है और इस तरह का प्रत्यक्षवाद यूरोप में भी विकसित हुआ—यह कभी डूब जाता है और फिर उभर कर आता है—इसका अध्ययन करना है। फिर, प्रत्यक्षवाद से निकली हुई एक धारा है—परमाणुवाद। किसी प्रपंच का विश्लेषण करने का एक तरीका है उसको सम्पूर्णता में देखो—ये ब्रह्माण्ड क्या है, एक तत्व कौन-सा है जिससे सारी सृष्टि-जगत की रचना हुई है। दूसरा तरीका यह है कि टेपरिकार्डर (टेबुल पर रख टेपरिकार्ड की ओर इशारा करते हुए) क्या है, इसके सारे पुर्जे खोल डालो और फिर देखो कि कुल मिलाकर यह कैसे काम करता है। यह तरीका है व्याकरण का। जो वैशेषिक दर्शन है वो विशेष चीजों के अध्ययन का दर्शन है, इससे जुड़ा हुआ है—व्याकरण दर्शन। हर प्रपंच के अल्पतम घटक को लेकर के अध्ययन करना परमाणुवाद है। प्रकृति का अध्यनन करना परमाणुवाद है। प्रकृति का अध्ययन करना है तो वहां अल्पतम घटक है परमाणु; भाषा का अध्ययन करना है तो वहां अल्पतम घटक हैं—धातु, प्रत्यय, उपसर्ग। भारत में औषधि-विज्ञान, व्याकरण शास्त्र, प्रकृति चिन्तन, तीनों में यह परमाणुवाद फैला हुआ है। यूनान में व्याकरण का विकास बहुत बाद में हुआ; भारत में व्याकरण का विकास बहुत पहले हुआ। मुझे कोई ऐसा देश दिखाई नहीं देता जहां किसी युग-विशेष में एक दार्शनिक दृष्टि अनेक क्षेत्रों में इस तरह से क्रियाशील रही हो। अब आज का आदमी 'वेदांत-वेदांत' सुनते-सुनते इतना आदी हो गया कि वो कल्पना ही नहीं करता कि यहां के आदमियों की प्रतिभा विश्लेषक भी रही है। विश्लेषण के बिना गणित कैसे बनेगा, दशमलव कैसे आएगा, व्याकरण कैसे लिखा जाएगा, पुल कैसे बनेंगे, सड़कें कैसी बनेंगी, मकान कैसे बनेंगे, इंजीनियरिंग की विद्या का विकास कैसे होगा? इस तरह, इस दर्शनशास्त्र के साथ विज्ञान का विकास जुड़ा हुआ था। इन सब चीजों को लेकर के 'भारतीय दर्शन की भूमिका' होगी। यह एक तरह से तुलनात्मक अध्ययन होगा—यूनान और भारत के दर्शन का। अंग्रेजी राज के आने के बाद कैसे हिन्दुस्तान के लोगों की मति बदल गई कि वे अपने देश को समझते ही नहीं हैं। उनके दिमाग में कूट-कूट कर भर दिया गया है—तुम अध्यात्मवादी हो, अध्यात्मवाद बहुत बड़ी समृद्धि है अथवा कुछ भी नहीं है—इसके बाद तुम्हारे पास कुछ नहीं है—विज्ञान से तो तुम्हारा कोई नाता है ही नहीं। इसका खण्डन करना है। दर्शनशास्त्र पर यहां काम समाप्त होगा। उसके बाद भारतीय इतिहास की समस्या है—यूरोप का नव जागरण काल और भारत का लोक-जागरण काल, दोनों का तुलनात्मक अध्ययन। इसके बाद यह काम समाप्त होगा।

प्रश्न : मार्क्स के विचारों में परिवर्तन और विकास होते रहे हैं, इस दिशा में यूरोप में भी तो अध्ययन हुए हैं। उन अध्ययनों के बारे में आप क्या सोचते हैं?

उत्तर : मुझे मार्क्स और एंगेल्स को छोड़कर उन्हें पढ़ने का समय ही नहीं मिला। लेकिन, हम

जानना यह चाहते हैं कि किसी ने कहा है कि भारत के बारे में मार्क्स की धारणाएं बदली हैं? किसी ने यह कहा है कि इंग्लैण्ड का मजदूर वर्ग क्रांतिकारी है और बाद में वह क्रांति विरोधी हो गया? हमने पूरी व्यवस्था की समीक्षा की है—पूरा सिस्टम देखा है। मार्क्स का चिन्तन हर मुद्दे पर बदला है—मजदूर वर्ग के बारे में पहले और बाद के विचार, उपनिवेशों के बारे में पहले और बाद के विचार। अगर किसी ने पहले यह काम किया है तो बहुत अच्छा काम किया है; हम उसे पढ़ नहीं पाए, हमारी कमजोरी है; लेकिन हम तो मार्क्स को पढ़कर उन्हीं के भीतर से उन्हें समझने की कोशिश करते हैं। अब भी हम मार्क्स के सारे 'वर्क्स' को नहीं पढ़ पाए हैं; अब भी पढ़ते हैं तो लगता है कि ये नई चीजें हैं जो हम पहले देख नहीं पाए थे। लेकिन अगर किसी ने पढ़ा हो तो उसे लेख लिखना चाहिए, इसके ऊपर कि रामविलास ने जो बातें कही हैं, वे सब पहले कही जा चुकी है और यहां-यहां इस तरह से हैं। हम ही स्वीकार कर लेंगे—हमने नहीं पढ़ा है, हमारी कमजोरी है, लेकिन भारत में जो लोग मार्क्सवाद लागू करते हैं उन्होंने मार्क्सवाद के उन्हीं पक्षों को लिया है जिनको मैंने बताया है कि ये परिवर्तित हुए हैं।

प्रश्न : आप लगभग पच्चास वर्षों से लेखन-कार्य कर रहे हैं और अब भी सक्रिय हैं। उम्र का अपने लेखन और चिन्तन पर आप क्या असर महसूस करते हैं?

उत्तर : उम्र के बारे में सोचा ही नहीं (हंसते हैं)।

एक बार केदारनाथ अग्रवाल ने मुझे पत्र लिखा था। पूछा था—"मौत के बारे में कभी सोचते हो?" तो मैंने उत्तर दिया था कि हर पांच साल के बाद अपने भीतर से सोच लेता हूं कि अभी कितने दिन काम कर सकता हूं, उस हिसाब से योजना बनाता हूं। तब मैं भाषा विज्ञान पर पुस्तक लिख रहा था। मैंने कहा कि मुझे लगता है कि पांच साल के अन्दर यह किताब खत्म हो जाएगी या नहीं; उसके बाद देखेंगे कि शक्ति है या नहीं है और उसके हिसाब से योजना बनायेंगे। तो अभी लगता है कि चार-पांच साल बड़े मजे में हम आगे काम कर सकते हैं। जब थकने लगेगें तब देखेंगे, अभी तो गर्मी में भी पांच-छह घंटे काम कर लेते हैं तो उम्र की वजह से हमें कोई परेशानी नहीं है। हम थोड़ी-बहुत कसरत कर लेते हैं—सवेरे-शाम। खूब आराम करते हैं। रात में काम नहीं करते हैं—दोपहर के बाद काम नहीं करते हैं—सवेरे सब काम निबटा लेते हैं। मुझे ऐसी कोई थकान महसूस नहीं होती जिसकी वजह से मेरे काम में बाधा पड़े।

प्रश्न : आपने केदारनाथ अग्रवाल की चर्चा की तो एक प्रश्न उन्हीं को लेकर है।

आपने केदारनाथ अग्रवाल को एक राजनीतिक कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसे लेकर थोड़ी-बहुत, अभी मौखिक ही, चर्चा हो रही है। सामान्य रूप से माना जा सकता है कि राजनीतिक कवि का चिन्तन-पक्ष ज्यादा सुलझा हुआ गहरा होना चाहिए, जैसा कि ब्रेश्ट के बारे में कहा जा सकता है। लेकिन क्या यह स्थिति हिन्दी में दिखाई पड़ती है? अक्सर नागार्जुन की वैचारिक गड़बड़ियों की ओर संकेत किया जाता है और आपने भी अपने '47 के एक लेख में केदारनाथ अग्रवाल की वैचारिक भ्रांतियों को चिह्नित किया है। अब प्रश्न है कि वैचारिक गड़बड़ियों और भ्रांतियों के बावजूद राजनीतिक कविताएं सम्भव हैं? और इसी से जुड़ा दूसरा

सवाल—नागार्जुन के राजनीतिक विचारों का आप किस रूप में मूल्यांकन करते हैं ?

उत्तर : तो सबसे पहले राजनीतिक कवि के रूप में केदारनाथ को प्रतिष्ठित करने की बात। प्रतिष्ठित तो वो पहले से ही थे, मैंने उन्हें प्रतिष्ठित नहीं किया। मैंने जो भाषण बांदा में दिया था। उसमें मैंने कहा था कि 'हिन्दी कविता में राजनीति की निर्णायक भूमिका', जिसका यह मतलब नहीं कि केदारनाथ केवल राजनीति ही लिखते हैं और इसके अलावा और कुछ नहीं लिखते। केदारनाथ अग्रवाल के ऊपर जो पुस्तक है उसमें कविताओं के मैंने भाग कर दिए हैं। अगर आप उन्हें देखेंगे तो बात स्पष्ट हो जाएगी। कुछ कविताएं ऐसी हैं जो उन्होंने अपने गांव के ऊपर लिखी हैं, तो उनका राजनीति से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। कुछ कविताएं उन्होंने अपनी पत्नी पर लिखी हैं, उनका भी राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। कुछ कविताएं उन्होंने राजनीति पर लिखी हैं; कुछ कविताएं मजदूरों पर लिखी हैं; कुछ कविताएं उन्होंने केन नदी पर लिखी हैं। केन नदी की सारी कविताएं मैंने एक जगह इकट्ठी कर दी हैं—कि आदमी अपने अंचल से कैसे जुड़ा हुआ है। उन कविताओं के विभाजन को देखने से ही आप समझ लेंगे कि राजनीति एक धारा है, पूरी धारा नहीं है, सारी कविताएं उसमें सिमटकर नहीं आतीं—उसकी निर्णायक भूमिका है, यह महत्वपूर्ण है। यह तो हुई उनके राजनीतिक रूप में प्रतिष्ठित होने की बात। अब जो वैचारिक गड़बड़ी है केदारजी में, वो तो अब भी है। वे समझते हैं कि यह देश जो है, इसमें कुछ होगा नहीं—यह रसातल की ओर जा रहा है। लेकिन कहो कि इसी पर कविता लिखो तो कविता नहीं लिखेंगे। क्योंकि वहां उनके अन्दर फिर दूसरी चेतना जागती है—'मेरा देश रसातल कैसे जायेगा ! जब तक मैं हूं मौत से लड़ूंगा और देश के लिए लिखूंगा।'

हम लोग जब राजनीतिक कविताओं की बात करते हैं तब समझते हैं कि मार्क्सवाद की कोई किताब पढ़ी है, राजनीति की कोई पुस्तक पढ़ी है, कोई साप्ताहिक पढ़ा है और उसको उलथा करके कविता में रख दिया। राजनीतिक कविता केवल विचारों की कविता नहीं होती; विचारों के साथ जब तक भाव-शक्ति नहीं होगी तब तक राजनीतिक कविता प्रभावशाली नहीं होगी। वैसे तो राजनीतिक कविता पच्चासों लोग लिखते हैं। कभी मैथिलीशरण गुप्त पर गोष्ठी हुई थी। उसमें नामवर सिंह वगैरह सब लोग थे, गिरिजा कुमार माथुर आदि। राष्ट्रकवि के रूप में हरेक आदमी उनको प्रतिष्ठित करने में लगा हुआ था और सभी एक-दूसरे से बढ़-बढ़कर बात कर रहे थे कि यह न कोई समझे कि हम कम प्रशंसक हैं। सवाल ये हैं कि मैथिलीशरण गुप्त की कविता लोगों को आन्दोलित क्यों नहीं करती, जैसी निराला की करती है ? उसमें वो शक्ति नहीं है—क्यों नहीं है, उसके अलग कारण है। भाव शक्ति के बिना विचार-शक्ति अधूरी है। विचार में जान होनी चाहिए। ताकत होनी चाहिए—उधार लिए विचार से काम नहीं चलेगा। तो केदारनाथ अग्रवाल का जो लगाव है केन नदी से, केदारनाथ अग्रवाल का जो लगाव तुलसीदास से है, निराला से है, केदारनाथ अग्रवाल का जो लगाव हिन्दी भाषा से है, बांदा के किसानों से है, अंचल से है—ये सारी जमीन है, जिसके ऊपर राजनीतिक कविता ऊपर उठती है। उन्होंने मार्क्सवाद पढ़ा, कम्युनिस्ट पार्टी से प्रभावित हुए; उसको अपने ढंग से समझा और लिखा भी उसके ऊपर; लेकिन वो किसी कार्यक्रम को कविता में छन्दोबद्ध नहीं करते; वो राजनीतिक कविताएं अपने ढंग से सूझ-बूझ के साथ लिखते हैं। तो चाहे नागार्जुन हों या केदार,

जब ये लोग सोचने बैठते हैं तो बहुत सी ग़लतियां करते हैं—और शायद भारत में कोई ऐसा मार्क्सवादी नहीं जो गलती नहीं करता, केवल यही गलती नहीं करते—और जब ये कवि लिखने बैठते हैं तो बात दूसरी होती है। यहां वे अपनी जमीन कभी नहीं छोड़ते। इसी तरह से नागार्जुन के साथ है। नागार्जुन की ज़मीन बहुत मजबूत है। ये दोनों कवि ऐसे हैं जिनका किसान जीवन से बड़ा गहरा लगाव है, निराला की तरह। दोनों के अन्दर एक व्यक्तित्व की अपनी ऊर्जा है जो मरती नहीं है। सन' 48 से—नागार्जुन ने जब से राजनीतिक कविताएं लिखना शुरू किया, जनता का पक्ष कभी नहीं छोड़ा। गलतियां जनता करती है, जनता के नेता भी करते हैं और नागार्जुन भी करते हैं—ये बात नागार्जुन अच्छी तरह समझते हैं। उन्होंने जनता का साथ कभी नहीं छोड़ा। दरअसल भारतीय जन-आंदोलन की जो कमजोरियां हैं वो भी नागार्जुन की कविताओं में झलकता है, और जो उसका सशक्त पहलू है वह भी नागार्जुन में झलकता है। इस हिसाब से नागार्जुन की कविताओं का अध्ययन आलोचनात्मक दृष्टि से बहुत ही शिक्षा प्रद होता है। नागार्जुन को मैं एक बहुत अच्छा कवि मानता हूं। मैं उनको बहुत बड़ा कवि मानता हूं। मेरे लिए इस युग के दो ही सबसे बड़े कवि हैं—एक नागार्जुन, दूसरे केदारनाथ अग्रवाल। दोनों राजनीतिक कवि हैं, दोनों किसान जीवन से जुड़े हुए हैं, दोनों गलतियां करते हैं, दोनों सफल कवि हैं और दोनों जनता से जुड़े हुए हैं। इनकी जो अमोघ ऊर्जा है—छिहत्तर साल में ये दमदार आदमी हैं—ये शक्ति इनको भारतीय जनता से मिलती है, अपनी संस्कृति से मिलती है, अपने पारिवारिक संस्कार से मिलती है, अपने अंचल से मिलती है। नागार्जुन जहां गलती करते हैं लोग उसके बारे में बहुत चिंतित हो जाते हैं—अभी तक इस पार्टी के साथ थे और अब उछलकर दूसरी पार्टी के साथ चले गए। हमको इससे कोई परेशानी नहीं है। हर पार्टी अपना रास्ता पहचानने में लगी है। हम तो किसी पार्टी के साथ नहीं हैं और हम सब की गलतियां निकालते हैं—अपनी-गलतियां तो होंगी ही उसमें, जब दूसरों की गलतियां निकलेंगे। हम ग़लती किए बिना तो सही रास्ते पर आगे चल ही नहीं सकते। ग़लतियों से डरना नहीं चाहिए; ग़लतियां करने का ठेका नेताओं ने नहीं ले रखा है, साहित्यकार भी ग़लतियां कर सकते हैं। लेकिन, ग़लतियां करने के बाद वो कुल मिलाकर अपनी जनता के साथ हैं या नहीं—या उन्होंने बिल्कुल 'राइट एबाउट टर्न' कर दिया है—कल वो जन-आंदोलन के साथ हो गए हैं। ऐसा परिवर्तन इन लोगों में किसी में नहीं मिलता। इसलिए जो राजनीतिक भटकाव समय-समय पर आता है, उससे परेशान नहीं होना चाहिए। और भी बातें हैं—ये कवि पचहत्तर पार कर गए हैं। पचहत्तर पार करने के बाद जितना लिख जायें वही बहुत बड़ी बात है, नहीं तो जितना लिखा है वही हमारे लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसको लेकर देखना चाहिए कि अब हम क्या कर रहे हैं। हम लोग जो इनकी नुक्ताचीनी कर रहे हैं, हम किस तरह की कविताएं लिख रहे हैं ? अरे भाई, इनमें जो कमी है तुम पूरा करो न—आओ न मंच के ऊपर ! तो इनके रास्ते पर चलने वाले, इनकी नकल करने वाले भी, लेकिन इनके साथ कंधे से कंधा मिला के आगे बढ़ने वाले कवि जरा कम ही दिखाई देते हैं। ये बात जरूर है कि मैंने समकालीन साहित्य जरा कम पढ़ा है, इसलिए दावे के साथ नहीं कह सकता कि हिन्दी में प्रगतिशील कविता जो है वह ह्रास की दशा में है या बहुत आगे बढ़ रही है या इनके आगे चली गई है।

प्रश्न : हिन्दी कविता में एक दौर धूमिल का रहा है। धूमिल काफी लोकप्रिय हुए और

सातवें-आठवें दशक के कई कवियों ने उनकी कविताओं का स्वर अपनाया; हालांकि इससे कविता को क्षति ही पहुंची; लेकिन यह उनके 'प्रभाव' का पहलू है, खुद धूमिल की कविताएं—खासकर 'पटकथा' 'मोचीराम', 'राजकमल चौधरी' आदि —हिन्दी कविता को एक अलग तेवर देतीं हैं। आपका क्या खयाल है?

उत्तर : धूमिल को मैंने सरसरी निगाह से पढ़ा है और शायद उनके बारे में कहीं लिखा भी है। जब मैंने 'नई कविता और अस्तित्ववाद' पुस्तक लिखी थी तब उस समय मैंने अपने मित्रों से कहा कि जो कुछ मुझे पढ़ना चाहिए, सब दे दो—उसमें मार्क्सवादी थे, गैर मार्क्सवादी भी थे। मित्रों ने मेरे लिए बहुत सारी पुस्तकें इकट्ठा कर दीं। उसको पढ़कर के मैंने वो लेख लिखे, उसके बाद से नई कविता पढ़ना बंद कर दिया। (हंसते हैं)।

प्रश्न : मुझे जहां तक याद है 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में भी धूमिल का उल्लेख नहीं है। उनके समय के और कवि हो सकते हैं, धूमिल नहीं हैं।

उत्तर : हो सकता है। उसमें यह भी देखना चाहिए कि हम अस्तित्ववाद के इर्द-गिर्द अध्ययन कर रहे थे; दूसरे, हम मित्रों पर निर्भर थे। उस समय हम निराला पर काम कर रहे थे, बीच में वो काम बन्द किया। 'निराला की साहित्य-साधना' का दूसरा भाग, मेरा अन्दाज है, इसके बाद निकला है। हम काम बन्द करके (निराला पर) इसके ऊपर (नई कविता पर) काम करने लगे और फिर उस पर लौट आए। निराला पर काम खत्म करने के बाद भाषाविज्ञान पर चले गए। तो धूमिल अच्छे कवि नहीं हैं—हम यह नहीं कहते, धूमिल बहुत अच्छे कवि हैं—यह भी नहीं कहते। धूमिल पर हमें लिखना चाहिए था—यह हम मान लेते हैं; और दूसरे कवियों पर लिखना चाहिए था, त्रिलोचन पर लिखना चाहिए था—यह भी हम मान लेते हैं; लेकिन हमने नहीं लिखा तो आप लोग लिखिए। हम कोई पेशेवर आलोचक नहीं हैं। हम कुछ प्रवृत्तियां देखते हैं—जो हमारी समझ में हानिकारक हैं, उनके ऊपर हमने लिखा; उनके विरोध में हमने एक दूसरे कवि को प्रतिष्ठित किया। 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में नागार्जुन पर एक लेख लिखा—यह बताने के लिए कि उसका विकल्प यह है। एक सीमित लक्ष्य है, जिसको लेकर हम चले, वो कोई नई कविता का इतिहास, नहीं है जिसमें सारे कवियों का मूल्यांकन हो।

प्रश्न : आपकी मान्यता है कि 'प्रतीक' के प्रकाशन से पहले की 'नई कविता' में यथार्थवादी रुझान प्रबल है। इस दृष्टि से आप सन '47 से पहले की अज्ञेय की कविताओं और 'शेखर : एक जीवनी' के बारे में क्या सोचते हैं?

उत्तर : पहले 'शेखर'। 'शेखर' में अज्ञेय क्रांतिकारी के रूप में आते हैं और पूरी व्यवस्था को बदलने की बात करते हैं। जो आदमी पूरी व्यवस्था को बदलने की बात करता है, वो अतिवादी हो सकता है, सही मार्क्सवादी हो सकता है; लेकिन व्यवस्था से समझौता तो नहीं करता। 'शेखर' की एक सीमित प्रगतिशील भूमिका है, यद्यपि वो अत्यंत व्यक्ति-केन्द्रित पुस्तक है और उसमें बहुत सारे भटकाव हैं, लेकिन 'शेखर' को हम लोग उस समय यह नहीं समझते थे कि वो प्रगतिविरोधी उपन्यास है। इसी तरह से उनकी कविताएं हैं, लेख हैं। एक लेख में इन्होंने कहा था कि मैं द्वन्द्व-सिद्धांत स्वीकार करता हूं। अज्ञेय मेरठ में किसान-सभाओं का गठन कर चुके थे, सन 42 के आस-पास उन्होंने फासिस्ट-विरोधी सम्मेलन में भाग लिया था।

ये रुझान थे उनके अन्दर। यह हम जरूर कह सकते हैं कि 'तार सप्तक' के जितने कवि हैं, उनमें शायद यथार्थवादी रुझान सबसे कम अज्ञेय में है। लेकिन, अज्ञेय जो नये उपमान लेकर सामने आते हैं, उनके अन्दर भी एक यथार्थवाद की पकड़ दिखाई देती है। आगे चलकर जो इन्होंने 'जैन-बौद्धिज्म' वगैरह का नारा दिया और 'आंगन के पार द्वार'—रहस्यवाद की बात करने लगे—ये अक्सर रहस्यवाद तो बहाने हैं; रोमानी प्रभाव हैं। लेकिन, रोमानी प्रभाव ऐसा नहीं है कि प्रगतिवाद का विरोधी है, 'तार सप्तक' में यही बात दिखाई पड़ती है। यहां अज्ञेय में यथार्थवादी रुझान दिखाई प ड़ता है, बाद में वे दूसरी तरह के हुए।

जब कांग्रेसी नेता जेल से छूटे तो उसी समय साहित्य में भी कम्युनिस्ट-विरोधी अभियान चला। तब यहां के जो बड़े-बड़े लोग थे, उन्होंने समझ लिया कि अब इन मार्क्सवादी लेखकों का साथ छोड़ना चाहिए। पहले पंत जी खिसके, तब नवीन जी खिसके, तब दिनकर खिसके, फिर अज्ञेय खिसके नेमिचन्द्र जैन खिसके, भारत भूषण अग्रवाल खिसके, गिरजा कुमार माथुर खिसके—कोई पहले खिसका, कोई बाद में खिसका। ये अभियान विश्वव्यापी अमरीकी कम्युनिस्ट-विरोधी अभियान का एक अंग है। तो यह एक तरह का अवसरवाद था कि इससे (प्रगतिवाद से) अपना पिंड छुड़ाना चाहिए। ये लोग अपना पिंड छुड़ाकर के और फिर नये-नये दर्शन ले आए—कोई अरविन्द दर्शन ले आया, कोई बौद्ध दर्शन ले आया, कोई अभिनव रहस्य-वाद ले आया—फिर मार्क्सवाद की आलोचना करने लगे। यह प्रक्रिया यहां पर खड़ी हुई। लेकिन, सन '46 से पहले अज्ञेय में यथार्थवादी रुझान है, यह हम स्वीकार करते हैं। उस दौर में भी अज्ञेय में उतार-चढ़ाव हो सकते हैं, लेकिन कुल मिलाकर के एक यथार्थवादी रुझान की वे बात करते हैं। यदि यथार्थवादी रुझान नहीं होता तो उसमें ('तार सप्तक' में) नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, रामविलास शर्मा जो मुख्य लोग थे, मार्क्सवादी थे; इनको लेकर वे तार-सप्तक निकालते हैं। अज्ञेय ने इस तरह के कवियों को समेटा है—प्रभाकर माचवे भी। इससे जाहिर होता है कि उस समय वे दूसरे थे, इसको छुपाने का उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। इन्होंने बताने की बहुत कोशिश की है कि हम तो शुरू से प्रयोगवादी थे; 'राहों के अन्वेषी' को इन्होंने एक दार्शनिक रूप दे दिया और कहा कि यह प्रयोगवाद है। मेरा कहना यह है कि अज्ञेय में यथार्थवादी रुझान कमजोर है, सबसे कमजोर है; लेकिन उनके साथ जो सारे कवि आये हैं उनके अन्दर यथार्थवादी रुझान काफी तगड़ा है। मार्क्सवादी प्रभाव बहुत स्पष्ट दिखाई देता है उनमें; कुछ लोगों ने तो अपनी भूमिका में साफ लिखा है कि हम कम्युनिस्ट हैं।

प्रश्न : 'तार सप्तक' के बाद भी जो कवि आए हैं—'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' में—शमशेर, रघुवीर सहाय सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और केदारनाथ सिंह—इनमें यथार्थवादी रुझान है।

उत्तर : इनमें यथार्थवादी रुझान निरन्तर कमजोर होता गया है। यथार्थवादी रुझान का मतलब यह होता है कि इस व्यवस्था को बदलना है। ये स्वर इन कवियों में निरन्तर मन्द होता चला गया है।

प्रश्न : इन सब कवियों में ?

उत्तर : सभी कवियों में। केदारनाथ सिंह को मैं प्रगतिशील कवि तो नहीं मानता। शमशेर बहादुर सिंह, 'वाम वाम दिशा…' कहने के बावजूद, उनके सारा सोचने का और बिम्ब-ग्रहण

करने का जो तरीका है, वो एक ऐसे आदमी का है जो अपने आनन्द की दिशा में अकेला बैठा हुआ है।

प्रश्न : और रघुवीर सहाय के बारे में ?

उत्तर : रघुवीर सहाय के बारे में भी यही है। यही है कि एकाध कविताएं अलग हैं; वैसे पन्त जी ने भी कुछ कविताएं लिखी हैं, लेकिन बहुत कमजोर ढंग का यथार्थवाद है; मैं यह नहीं कहता कि यथार्थ से बिल्कुल विमुख है।

प्रश्न : लेकिन सर्वेश्वर के बारे में तो ये कहा जा सकता है कि बाद में उनमें परिवर्तन और विकास—खास कर 80 के आस-पास—एक मोड़ उनकी कविताओं में दिखाई पड़ता है।

उत्तर : मेरी किताब तो 1980 के पहले की है। उस समय सर्वेश्वर से मेरी बातचीत होती रहती थी और उन्होंने कई कविता-पुस्तकें 'बांस का पुल' वगैरह, मुझे स्वयं पढ़ने के लिए दीं थीं। मैंने उन्हें पढ़कर के देखा कि ये लोग सार्त्र में जो एक तरह की असामान्य मानसिक दशा है उसको अपने ऊपर आरोपित करते हैं और उसके अनुसार कविता लिखने का प्रयत्न करते हैं। यह यथार्थवाद नहीं है। वे कहते हैं कि हम टूट रहे हैं, विघटित हो रहे हैं—यह यथार्थ है। लेकिन वास्तव में यह यथार्थ नहीं है—यह एक आरोपित यथार्थ है जिसका वास्तविक जगत से कोई संबंध नहीं है। कुल मिला कर के उस सारी कविता की धारा का प्रभाव यह पड़ता है कि मनुष्य कुछ नहीं है, वह कुछ कर नहीं सकता—टूटना ही उसकी नियति है। कम-से-कम मेरे ऊपर यही प्रभाव पड़ा।

प्रश्न : हम मानते हैं कि आपने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि और कार्यों का मार्क्सवाद के सहारे यथेष्ट विकास किया है। लेकिन शुक्ल जी के लेखन का एक पक्ष आपके यहां पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो पाया है या कहें उस तरफ आप उतना ध्यान दे नहीं पाये हैं, वह है—साहित्यशास्त्र। शुक्ल जी ने भारतीय काव्य-शास्त्र को पाश्चात्य साहित्य-सिद्धांतों से जोड़कर उसे समीचीन बनाने का प्रयास किया था। यह प्रयास शुक्ल जी के बाद बहुत कम दिखाई पड़ता है। और इस तरह हम कह सकते हैं कि हमारे यहां सौन्दर्यशास्त्र, खासकर मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र का समुचित विकास नहीं हो पाया और इसलिए एक सीमा से आगे आलोचना के औजार भी विकसित नहीं हो पाये। इस सम्बन्ध में आपकी पुस्तक 'निराला की साहित्य-साधना' का दूसरा खंड महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है; उससे निश्चय ही हमें कविता के विश्लेषण के कई महत्त्वपूर्ण औजार प्राप्त होते हैं, अपनी व्यावहारिक क्षमता के प्रदर्शन के साथ। फिर भी साहित्य की विभिन्न विधाओं के विश्लेषण के लिए हमारे अपने सौन्दर्यशास्त्र के विकास की आवश्यकता तो रह ही जाती है। इस दिशा में आप क्या सोचते रहे हैं ?

उत्तर : आपका जो आरोप है कि शुक्ल जी ने साहित्यशास्त्र का विकास किया और मैंने नहीं किया, वो आरोप बिल्कुल सही है—मैं उसे स्वीकार करता हूं। मैंने उस तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया, यह बात भी सही है। लेकिन मैं यह जानना चाहता हूं कि शुक्ल जी ने जायसी का जो

मूल्यांकन किया है वो उनके शास्त्र की किन स्थापनाओं के अनुरूप है ? शुक्ल जी की जो उद्-भावनाएं हैं और जो वास्तव में क्रांतिकारी उद्भावना है वो वास्तव में उनके साहित्यशास्त्र में कहीं दर्ज नहीं है। यह हर आलोचक के साथ होता है कि वो व्यवहार से सीखता है, व्यावहारिक आलोचना करते हुए उसके सामने समस्याएं पैदा होती हैं। पहले उसने शास्त्र रच लिया—शास्त्र रचेगा तो या तो साहित्यशास्त्र की पुरानी पुस्तकें पढ़ेगा, उनके ऊपर टिप्पणी करेगा या साहित्य पढ़ेगा, तब साहित्यशास्त्र रचेगा। पहले साहित्य पढ़कर के आप साहित्यशास्त्र रच लें, फिर उसे किसी साहित्यकार-विशेष पर लागू करें—यह प्रक्रिया किसी दूसरे के लिए संभव होगी, मेरे लिए संभव नहीं है, न इतना धैर्य है मुझमें। आपने जो **'निराला की साहित्य-साधना'** के दूसरे खंड की बात की, वो आपकी बात का उत्तर है। इसमें साहित्यशास्त्र की बहुत-सी समस्याएं सामने आती हैं, लेकिन जब मैंने पुस्तक लिखना शुरू किया था तब मेरे सामने कोई समस्या नहीं थी; जब मैं विश्लेषण करने लगा तो मैंने देखा ये-ये समस्याएं हैं और इनके ऊपर विश्लेषण के दौरान जो मेरी समझ में आया वो मैंने लिखा। तो मेरे सोचने और काम करने का तरीका ही दूसरा है। व्यावहारिक आलोचना से ही मैं किसी शास्त्रीय समस्या की तरफ जाता हूं। अगर कोई साहित्यशास्त्र की समस्या हो मेरे लेखन में तो वो अनुशंगिक रूप में आ गई है, वो आधार-रूप नहीं है कि उसको आधार मान करके मैंने किसी साहित्यकार की आलोचना कर रखी हो, ऐसा मैंने नहीं किया। मैं पूछ सकता हूं—लुकाच ने साहित्यशास्त्र के ऊपर बहुत लिखा है, हिन्दी में कितने लेखक हैं जो लुकाच के साहित्यशास्त्र को अपनी आलोचना में लागू करते हैं ?

प्रश्न : लुकाच ने साहित्य शास्त्र पर जो लिखा है वो अंग्रेजी में अनूदित तो है, लेकिन बहुत कम। उनकी सौन्दर्य-शास्त्र पर पुस्तक कई खंडों में है।

उत्तर : आप लुकाच को छोड़ दीजिए, कॉडवेल को लीजिए। कॉडवेल जो हैं, इनको आप कैसे लागू करेंगे साहित्य के ऊपर ? आप साहित्यशास्त्र को भी छोड़ दीजिए, खाली राजनीतिक रूप से मार्क्सवाद को लीजिए। मार्क्स ने मार्क्सवाद के ऊपर कहां लिखा है ? उनका सबसे बड़ा ग्रंथ 'कैपिटल' है। 'कैपिटल' में ऐतिहासिक भौतिकवाद कहां है ? ये बात इलाहाबाद में प्रगतिशील लेखकों के सम्मेलन में हुई थी। प्रभाकर माचवे ने कहा—इतना प्रगतिशील साहित्य रचा जा रहा है, लेकिन प्रगतिवाद है क्या, इसके ऊपर कोई पुस्तक नहीं है। मैंने उत्तर दिया—मार्क्स ने इतना सब लिखा और 'कैपिटल' लिख गए, लेकिन 'ऐतिहासिक भौतिकवाद क्या है ?" —पुस्तक नहीं लिखी 'कैपिटल' का महत्व यह है—उससे आप मार्क्स का तरीका सीखते हैं; इन्होंने जिस पूंजीवादी तन्त्र का विश्लेषण किया, वो तरीका महत्वपूर्ण है, वो तरीका 'एज सच' जो है वो महत्वपूर्ण है। अगर उनके पास 'डाइलेक्टिस' की कोई स्थापना पहले से मौजूद होती, जिसमें वो पूंजीवादी तंत्र को उलथा करके 'फिट' कर देते तो वो पुस्तक इतनी महत्वपूर्ण नहीं होती। 19 वीं सदी के अन्तिम चरण में रूस में मार्क्स पर यह आक्षेप किया जाता था कि मार्क्स ने जो कुछ लिखा है वो पूर्वाग्रहों से दूषित है, वो हेगेल से प्रभावित थे और हेगेल के 'डायलेक्टिक्स' के चौखटे में उन्होंने पूंजीवाद को 'फिट' कर दिया। लेनिन ने 1896 के आसपास इसका जवाब दिया। उन्होंने कहा है कि हेगेल से मार्क्स ने जो कुछ लिया है वह अनुशांगिक है

'इम्बेलिशमेंट्स' हैं, 'डेकोरेशंश' हैं; वो अन्तस्थ नहीं हैं मार्क्स के चिन्तन के। उनको (मार्क्स के विरोधियों को) यह बताना चाहिए कि मार्क्स ने यथार्थपरक जो पूंजीवाद का विश्लेषण किया है, उसमें कमी कहां है।'कैपिटल' का महत्व यह है कि उसमें पूंजीवाद का यथार्थपरक विश्लेषण है; उसी तरह बहुत छोटे पैमाने पर, मार्क्स से बहुत छोटे पैमाने पर, मार्क्स से बहुत नीचे उतर कर, 'निराला की साहित्य-साधना' का अगर कोई महत्व हो सकता है तो यह है। लेकिन यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि हम तरीका पहले निकाल लें और लागू करें बाद में। तरीका तो लागू करते हुए, विश्लेषण करते हुए ही निकलता है। तो मेरी आलोचना की अगर कोई कमजोरी होगी तो यह हो सकती है; अगर उसका कोई सबल पक्ष है, तो भी यही है। और मैं शुक्ल जी के बारे में तो निश्चित रूप से कह सकता हूं, उन्होंने 'लोक-मंगल की भावना' और 'लोक-हृदय में लीन होने की दशा' के बारे में चाहे जो कुछ लिखा हो। जायसी के बारे में जितनी अच्छी उदभावनाएं उनकी हैं, उतनी तुलसीदास के बारे में भी नहीं, सूरदास पर उन्होंने बहुत अच्छा लिखा है और अक्सर एक बात करते हुए बिल्कुल विरोधी बात उससे कहते हैं—यानी सामाजिक संदर्भ में कहते हैं और साहित्यिक सन्दर्भ में भी कहते हैं। सबसे रोचक हिस्सा उनके साहित्य के इतिहास का वो है जहां उन्होंने रहीम के ऊपर लिखा है। रहीम को उन्होंने भक्त कवियों से अलग रखा है और रहीम के ऊपर जब लिखते हैं तो हर 'पैराग्राफ' में उनको तुलसीदास याद आते हैं। अब रहीम पर लिखते हुए तुलसीदास याद आना यह मेरे लिए एक बहुत बड़ा मूल्य है उनकी आलोचना का जो उनके साहित्यशास्त्र में कहीं दर्ज नहीं है। इससे हमने निष्कर्ष यह निकाला कि लोक-जागरण के रूप में अगर सारी चीजों को आप देखेंगे तो रहीम के जो नीति परक दोहे हैं वो तुलसीदास के नीति-परक दोहों से मिलते हैं; रहीम के अन्दर जो लोक-संस्कृति का चित्रण है वो तुलसीदास के लोक-संस्कृति के चित्रण से मिलता है; रहीम की भाषा जिस तरह की है कि वो बिल्कुल कहावतों और लोकोक्तियों में घुलमिल जाती है, वो तुलसीदास के साथ भी है। तो केवल भक्ति को लेकर के हम दोनों को अलग क्यों करते हैं? हम यह क्यों न कहें कि यह सारा आंदोलन जो है—सारा साहित्यिक प्रवाह—यह लोकजागरण का प्रभाव है जिसमें भक्ति एक धारा है।

भक्ति को हम उस प्रवाह से अलग क्यों रखें। रहीम को हम फुटकल कवियों में क्यों रखें? शुक्ल जी ने रहीम को फुटकल कवियों में रखा, यह उनकी उपलब्धि नहीं है, उपलब्धि यह है कि फुटकल कवियों में डाल करके रहीम के साथ वो बराबर तुलसी दास को याद कर रहे हैं। तो इस तरह की जो उद्भावनाएं हैं वो बड़ी महत्वपूर्ण हैं। हमारे यहां शास्त्रीयता का इतना जोर है और क्लास में चूंकि अध्यापक को पढ़ाना पड़ता है—प्रगतिवाद का सिद्धांत क्या है?—एक, दो, तीन, चार गिना दो और बाद में संकेत कर दो कि ये सब पूर्वाग्रह हैं; मार्क्सवाद की सीमाएं हैं और कोई मार्क्सवाद को लेकर चलेगा तो सीमित तो होकर ही चलेगा। एक हमारे राजपूत कालेज के पुराने छात्र हैं—मेरे छात्र नहीं रहे हैं—इन्होंने मेरी पुस्तक 'हिन्दी जाति का सहित्य' की आलोचना की थी, रेडियो पर; वह आलोचना मेरे पास भेज दी थी उसमें इन्होंने लिखा था कि मार्क्सवाद सीमित दर्शन है, इसलिए ये सीमाएं इनके (रामविलास शर्मा के) लेखन में आनी ही चाहिए। मैंने इनको लिखा कि देखो मित्र, मार्क्सवाद ब्रह्म के समान असीम है; अन्तर यह है कि ब्रह्म विकासमान नहीं है और मार्क्सवाद विकासमान है, तो तुम सीमा किसकी बता रहे हो!

यह अन्य उदाहरण मैंने इस बात के लिए दिया कि हम मार्क्सवाद को सीमित नहीं मानते, हम उसे विकासमान मानते हैं; वो एक शास्त्र नहीं है, व्यवहार से पैदा हुआ दर्शन है, व्यवहार बराबर उसको समृद्ध करता है और उसके जरिए हम व्यवहार को समझने का प्रयत्न करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दी में सौन्दर्यशास्त्र होना नहीं चाहिए, लिखा नहीं जाना चाहिए। इसके ऊपर सोचना चाहिए, लेकिन जिसके पास समय हो वो सोचे। हमने नहीं किया, नहीं किया।

प्रश्न : फिर भी, शुक्लजी के साहित्यशास्त्र और उनकी व्यावहारिक आलोचना—तुलसी सम्बन्धी मूल्यांकन में जायसी सम्बन्धी मूल्यांकन में हमारी समझ से किसी स्तर पर अन्तर्सम्बन्ध दिखाई पड़ता ही है। जैसे वे कहते हैं कि तुलसी बड़े कवि इसलिए हैं कि उन्हें मार्मिक स्थलों की गहरी पकड़ है। यही तुलसी के मूल्यांकन में उनकी सबसे बड़ी कसौटी रही है। यह बात उनके शास्त्र में भी है, वे करुणा को सर्वाधिक महत्व देते हैं, उसी तरह, 'लोकमंगल' या 'लोकभाव' की अवधारणा है और जो वे जायसी के 'पद्मावत' का मूल्यांकन करते हैं। इन दोनों में तो सम्बन्ध देखा ही जा सकता है। और फिर, 'सिद्धावस्था' और साधनावस्था'—ये सिद्धांत तो सूरदास के प्रसंग में ही आए हैं।

उत्तर : आपने मार्मिक स्थलों के बारे में पूछा है। आप बताइए कि किस शास्त्र के अनुसार आप मार्मिक स्थलों की पकड़ करते हैं? आप लेनिन के लेख पढ़ें तो लोस्तोय के ऊपर। लेनिन बहुत बड़े मार्क्सवादी थे। अब मुझे बताइए कि मार्क्स की कौन-सी स्थापनाएं उन्होंने तोलोस्तोय के ऊपर लागू की हैं। साहित्य समाज का दर्पण है—तोलोस्तोय घोर धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी हैं, क्रांति का विरोध करते हैं—लेनिन ने कहा कि यह क्रांति का दर्पण हैं किसानों की छटपटाहट, उनके अन्दर जो क्रांतिकारिता है, जो उद्वेग है, उसका जैसा तोलोस्तोय के यहां चित्रण है और जितनी शक्ति से इन्होंने चित्रण किया, उतना और किसी दूसरे लेखक ने नहीं किया। लेनिन ने इस 'पावर' की बात, शक्ति की बात, कम-से-कम चार लेखों में की है। तोलोस्तोय की इस शक्ति को आप किस शास्त्र से पहचानेंगे? और मुख्य बात है इस शक्ति को नहीं पहचानते तो 'भैंस के आगे बीन बजाओ, भैंस खड़ी पगुराती।' अलंकार के साथ बड़ा आसान होता है, वक्रोक्ति वगैरह भी पकड़ लेना आसान होता है, लेकिन मार्मिक स्थल पकड़ना और साहित्य की शक्ति को पहचाना—यह कठिन होता है। निराला का इतना विरोध क्यों हुआ? और अब भी बहुत सारे लोग उनको स्वीकार कर लेते हैं कि इन पर इतना लिखा गया तो बड़े कवि तो होंगे ही, लेकिन पढ़ते कम हैं। केदारनाथ अग्रवाल पर बहुत कम लिखा गया, लेकिन उनके अन्दर जो शक्तिसत्ता है, वो बहुत से आलोचकों को छूती है। अब अगर छुती नहीं तो मैं क्या करूं कि तुम्हें छुए। इसलिए कुल मिलाकर, साहित्य में ही नहीं, राजनीति में भी, अगर देश प्रेम नहीं होगा, जनता प्रेम नहीं होगा, तो चाहे तुम अपने को जितना क्रांतिकारों में शामिल करते रहो, कहने की बातें होंगी। हिन्दुस्तान के मार्क्सवादियों में बहुत बड़ी कमजोरी है—कथनी और करनी में भेद। यह भेद क्यों होता है? इसलिए कि भाव-शक्ति नहीं है, वो लगाव नहीं है जनता से, वो छटपटाहट नहीं है कि हमारा देश जो

इतना अपमानित है, इतनी गरीबी है यहां और हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं। संगठित होने की क्षमता नहीं है। ये क्षमता कहां से पैदा होगी ? वो संवेदनशील होनी चाहिए। वो संवेदनशीलता एक मूलाधार है जहां से साहित्य भी निकलता है और राजनीति भी निकलती है। इसलिए लेनिन ने कहा है कि मार्क्सवादियों को हमेशा जनता से सीखना चाहिए। सारी थ्योरी के बावजूद कभी जनता सही रास्ते पर जाती है और तुम गलत रास्ते पर चलते हो। इसको हम महत्व देते हैं। यहां आदमी सही जगह पर है तो बाकी गलतियां वो ठीक कर लेगा। तोलोस्तोय की बहुत बड़ी शक्ति यह थी कि वे किसानों को बहुत अच्छी तरह से जानते थे। बहुसंख्यक जनता को जाने बिना आखिर आप देश का उद्धार कैसे करेंगे ?

प्रश्न : 'तोलोस्तोय रूसी क्रांति का दर्पण है'—इसमें भी एक साहित्य-सिद्धान्त निहित है कि 'साहित्य-समाज का दर्पण है'। यह 'दर्पण'-सिद्धान्त कब और कहां से आया है ?

उत्तर : यह सिद्धान्त बहुत गलत है। दरअसल विचारधारा दर्पण होती है, लेकिन उसमें एक रचनात्मक क्षमता होती है। आप एक से सौ तक की गिनती गिनिये, यह किसका दर्पण है ?

प्रश्न : तब इसमें और लेनिन के 'क्रांति का दर्पण' में फर्क क्या हुआ ?

उत्तर : उसका मतलब यह हुआ कि जो कुछ घटित हो रहा है, उसे प्रतिबिम्बित कर रहा है दर्पण। मनुष्य के विचार उसके वास्तविक जीवन का प्रतिबिम्ब हैं, यह तो मार्क्स की मान्यता है, उसी को उन्होंने (लेनिन ने) लागू किया है। लेकिन वहां पर जो अन्तर्विरोध था विरोधाभास ऊपर से दिखाई देता है, वास्तव में नहीं है, वो यह कि एक तरफ वह क्रांति का दर्पण है और दूसरे क्रांति के विरूद्ध है। ये दो चीजें कैसे शामिल हैं ? इससे थोड़ा अलग हट कर एक बात और। तोलोस्तोय जितना अहिंसावादी ऊपर से दिखाई देते हैं उतने नहीं हैं। आखिर रूसी प्रतिरोध का सबसे बड़ा महाकाव्य उन्होंने ही तो लिखा है—'वार एंड पीस'। 'वार एंड पीस' में अहिंसात्मक असहयोग थोड़े ही हैं। नेपोलियन की सेनाएं हैं, और वहां उन्होंने एक 'पैराग्राफ' लिखा' जिसे मैंने उद्धृत किया है—जनता की छापेमार लड़ाई की लाठी उठी और नेपोलियन की फौज पर गिरी धड़ाम से। फिर वो लाठी उठी, और फिर गिरी; धड़ाम से, और फिर उठी, फिर गिरी और नेपोलियन की फौज की रीढ़ जो थी टूट गई। अब ये जनता की छापेमार लड़ाई की जो लाठी उठती है, यह अहिंसावाद है ? यह तो प्रतिहिंसा है—लाठी का जवाब लाठी से। तो तोलोस्तोय बहुत पेचीदा लेखक है; उतने अहिंसावादी नहीं हैं उतने धर्मपरायण नहीं हैं। आखिर चर्च ने उनको बहिष्कृत कर ही दिया था। उनमें 'प्रोटेस्ट' अनेक रूपों में प्रकट होता है। ये सारी पेचीदगियां लेनिन ने समझी। लेकिन लेनिन का जो मूल सूत्र है, जो शास्त्र में नहीं आता, वो तोलोस्तोय की शक्तिमत्ता को पहचानना। इनमें कोई ऐसी चीज नहीं जो लोग जानते नहीं हैं, लेकिन चित्रण उन्होंने इतनी शक्ति के साथ किया है कि उन्होंने (लेनिम ने) कहा है कि 'मनुष्य जाति के कलात्मक विकास का अगला कदम है। मानव जाति के कलात्मक विकास में तोलोस्तोय का लेखन एक आगे बढ़ा हुआ कदम है। तोलोस्तोय के मरने के बाद बिना कम्युनिस्ट पार्टी के कहे हुए मजदूरों ने हड़ताल किया, लेनिन ने उसका स्वागत किया। उन्होंने लिखा है—अब मजदूरों ने अपने लेखक को पहचान लिया है। कहां मजदूर और कहां तोलोस्तोय ! लेकिन रूस के मजदूर भी समझते थे कि यह लेखक

हमारा है, इतनी जबर्दस्त आत्मीयता उन्होंने पैदा की थी। हम लोग विचारधारा पर बहुत जोर दिया करते हैं और जो जनता से लगाव है, जो उसका भावबोध है, उसको दर किनारे करते हैं। कभी-कभी भावबोध को भी विचार धारा कहते हैं। मूलबात है—संवेदनशीलता। उसके बिना क्रान्ति नहीं होती, उसके बिना साहित्य नहीं रचा जाता। इसलिए साहित्य-शास्त्र महत्त्वपूर्ण है, लेकिन हमारे लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है। मुख्य चीज है संवेदनशीलता, उसके सहारे व्यवहार से सिद्धान्त की ओर आना—व्यवहारिक आलोचना का विकास करना और उसके दौरान जो सिद्धान्त है उसकी परख करना।

प्रश्न : हिन्दी जाति के विकास और उसकी साहित्यिक परम्परा का आपके यहां जो अध्ययन प्रस्तुत हुआ है वह हमें गौरवान्वित करता है। लेकिन, संस्कृति और कला के दूसरे क्षेत्रों में हमारी स्थिति क्या रही है, इस पर शायद आपने नहीं लिखा है, हिन्दी के दूसरे लोगों का भी इन विषयों पर कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं दिखाई पड़ता। इसी से जुड़ा सवाल मेरे मन में उठता रहा है कि जिस जाति का हजार साल पुराना इतिहास है और पिछले युगों में साहित्य से लेकर दूसरे कला-विषयों में जिसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां रही हों, आज उसकी साहित्य से परे कायदे की कोई स्थिति दिखाई नहीं पड़ रही है। हम अभी तक अपना रंगमंच विकसित नहीं कर पाये, जिसे हम हिन्दी सिनेमा कह सकते हैं और जो महानगरों में रंगमंच हैं वे सभी गैर-हिन्दी भाषियों के प्रयास से हैं। इसलिए उनका कोई वैसा चरित्र नहीं बन पा रहा है जिसे हिन्दी जाति से जोड़ा जा सके। आपकी दृष्टि में इस स्थिति का कारण क्या हो सकता है?

उत्तर : पहली बात तो ये है कि साहित्य के साथ दूसरी कलाओं का इतिहास लिखना चाहिए, ये बात बिल्कुल सही है; लेकिन एक आदमी के लिए सब लिखना संभव नहीं होता।

प्रश्न : सवाल यह है कि हिन्दी क्षेत्र जिसे कहते हैं, उसकी कलाओं और संस्कृति पर गैर-हिन्दी वालों ने लिखा, अंग्रेजी वालों ने लिखा; हिन्दी वालों ने उस पर नहीं लिखा और न ही कला और सांस्कृतिक माध्यमों को विकसित करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

उत्तर : जो बहुत-सी कमियां हैं, उसमें एक यह भी है। और इतिहास की उपेक्षा, यह तो परम्परा से चली आ रही है, कोई नई बात नहीं है उस पर लिखना चाहिए, इस बारे में मतभेद नहीं है। साहित्य के बारे में भी बहुत-से मित्र कहते हैं कि हिन्दी पर, उर्दू पर, लिखना चाहिए —जरूर लिखना चाहिए। लेकिन एक आदमी के लिए संभव नहीं है कि वो 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव-जागरण' लिखे तो उस समय जो कुछ उर्दू में लिखा गया उसको भी लिखे। ये काम दूसरे आदमी को करना चाहिए। इस तरह के काम संस्थाएं कर सकती हैं, पार्टियां कर सकती हैं; वो ऐसे आयोग बना सकते हैं, कमिशन नियुक्त कर सकते हैं जहां लोग मिल करके काम करें। तो ये सब काम होना चाहिए, इस बारे में जरा भी मुझे दुविधा नहीं है। और मैं समझता हूं कि भारतीय संस्कृति को समझने के लिए दर्शनशास्त्र, साहित्य, भाषाविज्ञान और कलाओं का विकास, इन सबको एक साथ लेकर जब आप अध्ययन करेंगे

तब पूर्ण ज्ञान आपको प्राप्त होगा, किसी भी युग के बारे में। अमरीका के एक 'नोबेल प्राइज विनर' ने एक किताब लिखी—'साइंस आफ मैन'। 'फिजिक्स' या 'केमेस्ट्री, किसी में उन्हें 'नोबेल प्राइज' मिला था। उन्होंने कहा कि 'इकोनामिक्स' की किताबें अलग हैं, पालिटिक्स की किताबें अलग हैं, 'साइकोलाजी' अलग है, 'फिजिक्स' अलग है, 'केमेस्ट्री' अलग है, और हैं सब मनुष्य से सम्बन्धित; तो उन्होंने कहा कि इसके लिए मैं योग्य तो नहीं हूं, लेकिन मैंने सोचा कि मैं ही क्यों न काम करूं। मनुष्य से सम्बन्धित जितनी जानकारी हैं सब उन्होंने एक जगह इकट्ठी कर दी। तो जैसे उन्होंने 'साइंस आफ मैन' में सारी 'सांइसेज' को मनुष्य से मिलाने का प्रयत्न किया है, वैसे ही भारत में सोलहवीं सदी का इतिहास या बीसवीं सदी का इतिहास उसमें दर्शन, भाषाशास्त्र, साहित्य, समग्र कलाओं का इतिहास, इन सबको लेकर के लिखना चाहिए, तब पूरी तस्वीर आएगी। अभी हम साहित्य में ही पूरा काम नहीं कर पाये हैं। 'भारतेन्दु युग' जब हम लिखने लगे तो हमें लगा कि यहां तो इतनी सामग्री है कि हम पांच-छह साल इसके ऊपर काम करें तो पूरी किताब लिखी जायेगी; तो हमने कहा कि इतना तो समय ही नहीं है हमारे पास; तो जितना मिला इधर-से-उधर खिंच करके हमने कहा कि एक रूपरेखा तो प्रस्तुत कर दें। जहां काम करने जाओ, निराला पर काम करते हुए—निराला पर तो इतने दिनोंसे लिखा जा रहा है, हमने देखा कि बहुत-सी चीजें हैं, इन पर लोगों ने ध्यान ही नहीं दिया है, बहुत-सी चीजें ऐसी हैं जिनको पहली बार यहां प्रस्तुत करना जरूरी है—यानी निराला ने लिखा क्या है, यही पता नहीं है। तो हर जगह एक तरह का 'स्पेड वर्क है—पहले-पहल की खुदाई ये सब करने की जरूरत है। हम लोग इस मंजिल में हैं। अगली मंज़िल जो आनी चाहिए वो यह कि ये जो सारी कमियां रह गई हैं कि हिन्दी के साथ उर्दू को देखना चाहिए, जन-पदीय भाषाओं को देखना चाहिए, फिर भारत की अन्य भाषाओं को लेकर चलना चाहिए; भारत की अन्य भाषाओं के अलावा जो यहां कलाओं का विकास हुआ उसको लेना चाहिए; दर्शनशास्त्र को लेना चाहिए, विज्ञान का जो विकास हुआ उसे लेना चाहिए। इस सब को लेकर के तब भारत की तस्वीर—एक सामाजिक इतिहास, सांस्कृतिक इतिहास—लोगों के सामने आएगी।

इसके आगे क्या था, मैं भूल गया।

प्रश्न : आगे सवाल ये था कि जिस जाति का इतना गौरवशाली इतिहास रहा हो…

उत्तर : हां मुझे याद आ गया। ये जो गौरवशाली इतिहास है 1857 के पहले का है। '1857' वाली किताब आप अगर पढ़ें, लोक भारती से शायद नया संस्करण आ गया है। उसमें मैंने बताने का प्रयत्न किया है कि अंग्रेजों ने कैसे इस बात को पहचान लिया था कि हिन्दुस्तानी लोग हैं, इनको उभरने नहीं देना चाहिए; पंजाब में इन्होंने नियम बनाया कि कोई हिन्दुस्तानी सरकारी नौकरी न पाये। किसी भी प्रदेश का हो—कश्मीरी हो, पंजाबी हो, बंगाली हो, मराठी हो, उनको सबको सरकारी नौकरी मिल सकती है; हिन्दुस्तानी आदमी जो है उसको सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती, चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान हो। 1800 के पहले उर्दू शब्द का व्यवहार कहीं भी भाषा के लिए नहीं होता था, छावनी के लिए होता था। 1802 में जब फोर्ट विलियम कॉलेज कायम हुआ तो उसके बाद उन्होंने संगठित प्रयत्न किया कि मुसलमानों की भाषा उर्दू हो और हिन्दुओं की भाषा हिन्दी हो और उन्होंने लल्लू जी लाल को लाया दूसरों

को लाये, काजी मलीर को लाये। काजी मलीर ने जब उर्दू लिखी तो वो बहुत, हिन्दी के बहुत करीब थी, तो उन्होंने कहा कि इसमें फारसी के शब्द और डालो, जिससे अलग दिखाई दे। ये सारी प्रक्रियाएं कर चुके हैं ये लोग। 1872 के आस-पास जब राजा शिवप्रसाद ने यह प्रयत्न, किया कि हाईस्कूल तक कम-से-कम हिन्दू-मुसलमान लड़के एक ही कक्षा में पढ़ें—भूगोल, इतिहास, विज्ञान। उन्होंने कहा कि ऐसे ही 'टेक्स्ट बुक्स' बना दीजिए। अंग्रेजों ने कहा कि बना के दिखाओ, और पण्डित और मुल्ला, दोनों उसको स्वीकार करें तब हम प्रयास करें। तब उन्होंने बड़ी मेहनत से तीन-चार टेक्स्ट बुक्स—पाठ्य पुस्तकें—बनाई और उन्होंने पंडितों से भी पास करा लिया और मौलवियों से भी पास करा लिया। लेकिन जो लेफ्टिनेंट गवर्नर था, उसने रद्द कर दिया; उसने कहा कि यहां पर मुसलमानों के खिलाफ है और यहां हिन्दुओं के खिलाफ हैं। इस तरह से संगठित रूप से ये प्रयास करते रहे।

1857 एक मोड़ है। इसके बाद अंग्रेजों ने व्यवस्थित ढंग से इस क्षेत्र को खण्डित करने, तोड़ने, यहाँ की संस्कृति को दबाने का प्रयत्न किया है। इस प्रदेश की कुछ खास अपनी विशेषताएँ हैं, जो अन्य प्रदेशों में नहीं हैं। जैसे—बंगाल। बंगाल आधा मुसलमान है और आधा हिन्दू है, लेकिन उनके यहां मुसलमानों की बंगला और हिन्दुओं की बंगला, ऐसा भेद नहीं है। हिन्दी-उर्दू का भेद केवल हिन्दी प्रदेश की विशेषता है। कश्मीर में तो बहुसंख्यक मुसलमान हैं, लेकिन हिन्दुओं की कश्मीरी अलग नहीं है; हिन्दुओं की सिंधी अलग नहीं है; हिन्दुओं की पंजाबी अलग नहीं है; हिन्दुओं की मराठी अलग नहीं है। धर्म के आधार पर भाषा का विभाजन, उसको आप चाहे जितना सांस्कृतिक विभाजन कहें, वो अंग्रेजों ने पैदा किया। उसके बाद, ये क्षेत्र इतना बड़ा है कि इसमें अनेक जनपद हैं, जितने जनपद बंगाल में नहीं है, महाराष्ट्र में नहीं हैं, तो यहां पर एक जनपदीय भाषाओं की समस्या है। मैथिली हिन्दी की बोली है यह अलग है, भोजपुरी स्वतंत्र भाषा है यह अलग है हमारी साहित्य अकादमी है जिसने भोजपुरी भाषा को अलग से पुरस्कार दिया। भोजपुरी पढ़ाते सब नहीं हैं, लेकिन कुछ लोग पुस्तक लिखते हैं और उस पर पुरस्कार पाते हैं। और भी यहां पर भाषावार प्रान्तों का आन्दोलन चला। ऐक्य-केरल में, संयुक्त महाराष्ट्र विशाल आन्दोलन, ये सब आन्दोलन चले; किसी ने यह नहीं कहा कि हिन्दी प्रदेश जो है एक होने चाहिए। कम्युनिस्ट पार्टी जब भाषावार क्रांति की बात करती है, जातियों की बात करती है तो हिन्दी भाषी क्षेत्र को अलग रख देती है कि इसके बारे में बोलना मत। जो हमारे रहनुमा हैं वो हमारी जातीय समस्या की तरफ ध्यान नहीं देंगे तो कौन ध्यान देगा? पूंजीपति तो ध्यान देंगे नहीं, 'उनके जो 'नेशनल डेली' हैं सब अंग्रेजी में निकलते हैं। तो यह हिन्दी भाषी प्रदेश की एक समस्या है जो हमारे सांस्कृतिक विकास को रोकती है। दूसरी समस्या जनपदीयता की है, जनपदीयता और मानक भाषा, इनके सम्बन्ध को न समझने की, जिससे रुकावट बढ़ती है। तीसरी चीज यह है कि अंग्रेजों ने यह प्रयत्न किया कि इस देश को उपनिवेश की तरह रखा जाय और दूसरे प्रदेशों से लाकर के यहाँ पर शिक्षक, अध्यापक, डॉक्टर, वकील ये सब कायम किये जाएं। एक जमाना ऐसा था कि जब हम लखनऊ यूनिवर्सिटी में पढ़ने आए थे तो वहाँ पर अंग्रेजी विभाग में, इकोनोमिक्स में, हिस्ट्री में, कोई इधर का आदमी था ही नहीं, सब पूरब के थे और दक्षिण के थे। यह सब परिवर्तन धीरे-धीरे हुआ।

हमारे प्रदेश के जो नेता लोग हैं, चाहे किसी भी पार्टी के हों—ये अपनी भाषा और

साहित्य से इतने बेखबर हैं, उतने केरल या आंध्र में या महाराष्ट्र में या बंगाल में नहीं। ये यहाँ के कम्युनिस्टों की विशेषता है—उपदेश देने के लिए तो तुरन्त तैयार हो जाएँगे और पढ़ेंगे नहीं। राय देने के लिए, खास कर गलती निकालने के लिए, लेकिन पढ़ेंगे नहीं। एकाध को छोड़कर, लेकिन कुल मिलाकर के स्थिति यही है। और भी, यहाँ पर जो बड़े पूँजीपति हैं, वो ज्यादातर इस प्रदेश के नहीं हैं, राजस्थान के हैं। मारवाड़ी पूंजीपति जितना शक्तिशाली है, हिन्दी प्रदेश के या उसके बाद कलकत्ते में, उतना दूसरी जगह नहीं हैं।

1857 के बाद अंग्रेजों ने जब पहचान लिया कि यह प्रदेश बागियों का प्रदेश है तो उन्होंने इसको दबाना शुरू कर दिया और यहाँ के शिक्षित जनों को उभरने नहीं दिया। बाहर के लोगों को लाकर के यहाँ नौकरियों में रख दिया। यहाँ के पूँजीपति भी यहाँ की उपज नहीं हैं, वो राजस्थान के हैं। तो बड़े मारवाड़ी पूंजीपति हैं, इन सबके राष्ट्रीय दैनिक सब अंग्रेजी में हैं, हिन्दी में भी निकाल देते हैं क्योंकि उससे मुनाफा जो मिलता है; लेकिन राष्ट्रीयता जो है उसका सम्बन्ध अंग्रेजी से है, इससे नहीं। तो ये बहुत सारे कारण हैं जिसकी वजह से हम लोग पिछड़े हुए हैं अगर ये जानकारी हो जाय तो आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलेगी।

ये प्रश्न का उत्तर हुआ हिन्दी जाति के बारे में।

प्रश्न : समकालीन आलोचना में आपने असहमति के बिन्दु ही अधिक देखे हैं। आपकी दृष्टि में आज की आलोचना का स्वरूप क्या होना चाहिए ?

उत्तर—जैसा हम लिखते हैं। (हँसते हैं)।

आलोचनात्मक लेखन मेरा बहुत कम है। सन '63 में 'भाषा और समाज' पुस्तक लिखी, उसके बाद आलोचनात्मक पुस्तक के नाम पर निराला पर पुस्तक है या 'अस्तित्ववाद और नई कविता' हमारी पुस्तक है या द्विवेदी-युग पर पुस्तक है। इनमें भी इतिहास काफी है, केवल शुद्ध आलोचना नहीं है। समकालीन आलोचना बहुत ध्यान से मैंने पढ़ी हो, ऐसा आप नहीं कह सकते। जहाँ विषमता आपको दिखाई देती हो, वह इस कारण कि जैसे शुक्ल जी पर मैंने पुस्तक लिखी और शुक्ल जी पर दूसरे ने लिखा तो मैं यह जानने की कोशिश करता हूँ कि यह दूसरा आदमी क्या लिख रहा है। जिन पर मैं लिख चुका हूँ, उन पर जब दूसरे आदमी लिखते हैं तो उसको मैं जरूर पढ़ता हूँ और खास करके पुस्तक का जब नया संस्करण निकलने को होता है। ऐसे कई संस्करण हैं मेरी पुस्तकों के। मैंने गोयनका को पढ़ा ही नहीं था, जब प्रेमचन्द वाली पुस्तक का नया संस्करण निकलने को हुआ तो मैंने पूछा लोगों से कि क्या पढ़ना चाहिए। उन्होंने कहा जैदी की किताब पढ़ लो। ये दो किताबें हुई, इनको पढ़ कर के मैंने लिखना शुरू किया। उनमें दृष्टिकोण बिल्कुल अलग था, तो स्वभावतः उनके ऊपर लिखा। इसका मतलब ये नहीं है कि प्रेमचन्द पर जो कुछ भी लिखा गया वह सब बेकार का है या सबसे मैं असहमत हूँ; आंशिक रूप से कुछ प्रवृत्तियां उभर रही हैं उनको मैंने रेखांकित करना आवश्यक समझा।

आलोचना का स्वरूप कैसा होना चाहिए, यह तो स्वाभाविक है कि हर आदमी समझता है कि जैसा मैं लिखता हूँ वैसा सब लिखें; लेकिन ऐसा संभव नहीं है। मैं समझता हूँ कि हिन्दी के लेखक, केवल आलोचक नहीं, सभी हिन्दी-लेखक, अगर ईमानदारी से लिखना शुरू करें, जो बातें वे आपस में कहते हैं वे मंच पर जाकर कहें—ऐसा नहीं कि घर में कुछ कहा और

बाहर जाकर कुछ कहा, अगर यह आदत छोड़ दें—तो हिन्दी आलोचना बहुत तेजी से आगे बढ़ेगी और हिन्दी साहित्य भी। बड़ी मुश्किल यह है कि यहाँ पर हमारे साहित्यकार जो हैं। विद्यालयों से जुड़े हैं और विद्यालयों में कौन कहाँ परीक्षक नियुक्त होता है, कहाँ किसकी कापी जाती है—ये सारे सवाल आपस में जुड़े हुए हैं। अध्यापकों की अपेक्षा साहित्यकार विश्वविद्यालयों के बाहर के लोग अधिक हों तो फिर हिन्दी साहित्य का बहुत विकास होगा और हिन्दी आलोचना की भी दिशा बदल जायेगी।

प्रश्न : तो फिर हिन्दी साहित्य के विकास के लिए किस तरह के प्रयास की आवश्यकता आप महसूस करते हैं ?

उत्तर : मेरी समझ में ऐसा कोई गतिरोध नहीं है। हमने जब से लिखना शुरू किया तब से लोग यह शिकायत करते थे कि कुछ नहीं हो रहा है। जिस समय निरालाजी जीवित थे, उस समय भी लोग कहते थे कि हिन्दी में क्या है। ऐसा कहने वाले हर युग में रहे हैं। अपने युग में क्या अच्छा लिखा जा रहा है, इसको पहचान लेना इतना आसान नहीं होता है। क्योंकि वह हमारे इतने नजदीक होता है कि हम समझते हैं कि जैसे हम हैं वैसा ये होंगे, हमसे अच्छा क्या होंगे, जब हम ही बहुत अच्छा नहीं लिख रहे हैं तो ये अच्छा कहाँ से लिखेंगे। तो इस युग में सब कुछ घटिया हो, ऐसा नहीं है,' बहुत कुछ अच्छा लिखा जा रहा है। निरालाजी के युग में सब कुछ बढ़िया लिखा जा रहा था, ऐसा नहीं था। तमाम कवियों को हम भूल गये हैं, अब चार-पाँच कवि जो हैं वो उभर करके हमारे सामने आये हैं। शुक्ल जी के जमाने में बहुत-सी आलोचनाएं लिखी जाती थीं, अब शुक्ल जी को लोग बहुत याद करते हैं, दूसरे लेखकों को भूल गये हैं।

ऐसा इस युग में भी होना चाहिए। इसलिए निराश होने की कोई बात नहीं है। खूब आलोचनात्मक निगाह से पढ़ना चाहिए। और जो आदमी भी जिस जगह पर है, मान लीजिए कि वह केवल पाठक है, अगर वो ईमानदारी से पढ़ता है और अपनी राय देता है तो वो भी हिन्दी साहित्य के विकास में योगदान करता है। पाठक का बहुत बड़ा योगदान होता है, आखिर साहित्यकार सब कुछ उसी के लिए तो लिखता है। पाठक और साहित्यकार, जितना ये एक-दूसरे के नजदीक होंगे उतना ही साहित्य प्रगति करेगा। और सबसे बड़ी बात यह है कि हिन्दी साहित्य के प्रदेश में, जहाँ ये लिखा जाता है, वहाँ निरक्षरता का दर सबसे ज्यादा है, कुल मिलाकर के हिन्दी प्रदेश निरक्षरों का प्रदेश है। हम जिस जनता के लिए लिखते हैं, जब तक वह निरक्षर है, साहित्य का विकास कैसे होगा ? लेकिन क्या आप यह कह सकते हैं कि निरक्षरों का यह अनुपात सदा से चला आ रहा है या बंगाल या केरल में साक्षरता का जो अनुपात आज जो है वह सौ साल पहले भी था ? दूसरे प्रदेश तरक्की कर रहे हैं अनेक कारणों से, हमारा प्रदेश जो है तरक्की नहीं कर रहा है अनेक कारणों से, जिसमें राजनीतिक कारण मुख्य हैं। हमारा कहना यही है कि हम लोगों को निरक्षरता दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। हमारी जनता जितना ही साक्षर होगी उतना ही हमारे साहित्य और संस्कृति का आधार मजबूत होगा। □

कहानी

घाल्लू

☐ नरेश पंडित

जंगल में आग फैलती जा रही है। आधे से ज्यादा देवदार का जंगल आग ने घेर लिया है। सुबह से यह आग नीचे झाड़ियों से शुरू हुई और अब रात तक इसने आधा जंगल अपनी लपटों में समेट लिया। यह पीली लाल लपटें चमकती हुई काली रात को चीर रही हैं। आग की रोशनी सारे जंगल को तमतमा रही है। देवदार की शाखाएं तड़-तड़ाहट से टूट रही हैं। पूरे-के-पूरे पेड़ जलते हुए। आग की शँ शँ ने बहती नदी के शोर को दबा दिया है। बहते पानी पर तैरता आग का बिम्ब इस रात को और भी भयानक बना रहा है। आग पहाड़ के पेट में फैलती हुई, सामने के नाले की तरफ बढ़ रही है। शायद हवा का रुख, उस तरफ बदल गया है। अगर आग सामने के जंगल तक पहुंच गई तो बहुत तबाही करेगी। जब तक बादल नहीं बरसेंगे इस जंगली आग को ठण्डा करने वाला कोई नहीं होगा। जलती रहेगी, फैलती रहेगी और तबाही करती रहेगी।

मजदूर हरकत में आये। वे ऊपर रास्ते में रखे शहतीरों के चट्ठे की तरफ जा रहे हैं। देवदार के पेड़ों को काटकर, शहतीर तरतीब से रखे गये हैं। जो चट्ठे, ऊपर जंगल के पास लगाये गये थे। उनको आग लगने का खतरा है। मजदूर शहतीरों को पीठ पर लाद कर नीचे रख रहे हैं। ठिगने पहाड़ी मजदूर। एक सी शक्लें। गाल चिपके हुए, आंखें तीखी, कसी-कसी पिंडलियां और चेहरा सपाट। आधे से ज्यादा इनमें नेपाली गोरखे हैं और बाकि पहाड़ी 'घाल्लू' हैं। नदी में मैदान की ओर ले जायी जाती लकड़ियों की 'घाल्ल' का मजदूर विशेष कहलाता है 'घाल्लू'। यह 'दरईयां' पर तैर कर 'घाल्ल' चलाता है। भैंस की खाल में हवा भर कर पानी में गुब्बारे की तरह तैरती हैं 'दरईयां'। घाल्लू दरईयें पर पेट के भार लेटकर, हाथों में चप्पू और अपने दोनों पैर चलाकर पानी में घूमता रहता है।

सौणू घाल्लू ने अपनी टोपी से चेहरे का पसीना पोंछा और पास रखे हुक्के से कश लेने लगा। काम खत्म हो गया था। सारे के सारे चट्ठे नीचे लगा दिये गये थे। मुन्शी-कर्मू चरानी के साथ शहतीरों का हिसाब लगाने लगा। रात का आखिरी पहर हो चला था। सौणू ने कर्मू को आवाज दी और वे दोनों सभी मजदूरों के साथ अपने-अपने डेरों की ओर बतियाते चलने लगे।

"सौणू चाचू देख,…ये आग कितनी ज्यादा फैल गई है। सवेरे एक पलीता लगाया था और अब सारा जंगल स्वाहा हो गया है। इस ठेकेदार को तो नरक में भी जगह नहीं

मिलेगी जिसने अपनी चोरी छिपाने के लिए सारा जंगल जला दिया…हमें तो यह पाप नहीं चढ़ेगा न चाचू…?"

"कमूं, ये तुझे क्या हो गया है?…पता नहीं तू ये कैसी बातें कर रहा है…मरना दे, जंगल को भी और ठेकेदार को भी, हर साल जंगल इसी तरह जलाए जाते हैं हमारा क्या वश चलेगा ठेकेदारों के आगे, हमें तो अपना काम खत्म करना है बस…चल जल्दी चल…रात बहुत हो गई हैं। मेरा तो तम्बाकू भी खत्म हो गया। गोरखों से मंगवाना पड़ेगा…भई, ये गोरखे भी तगड़े जवान हैं। जब मर्जी इनको उठा दो—न रात देखते हैं न दिन।"

"हां देखे भी हैं ये गोरखे…उंह…बड़ा काम करते हैं…याद नहीं है, जब वो शहतीर नाले में फंसा था…टैं…हो गई थी इनकी…इनका बाप मैं ही आया था। पर चाचु इनको भी क्या बोलना। बेचारे परदेस में आये हैं। इधर ठेकेदार का डर, परदेस में भी कोई कमाई होती है!"

"पर कमूं…ये अच्छा पैसा बना लेते हैं। एक ही कटान में साल भर का निकल जाता है। बताते हैं इनके देश नेपाल में, पैसे दुगने हो जाते हैं।"

"तू क्यों नहीं चला जाता नेपाल…ऐसी बात होती तो इनकी ये हालत न होती। जैसा ये खाते हैं, सभी जानते हैं।"

घाल्लूओं का डेरा सामने आ गया है। पहाड़ की लान पर एक के ऊपर एक शहतीरों की चिनाई करके बनाया गया डेरा। डेरे की छत तिकोन के आकार-सी तिरछी है और अन्दर ज़मीन पर लकड़ी के तख्तों पर घाल्लू अपने गुदड़ों में छुपे हुए।

कमूं चरानी का तो पास ही गांव है पर वह आजकल यहीं सौणू घाल्लू के डेरे में पड़ा रहता है। इस बार इसका भी घाल्ल चलाने का इरादा है और घाल्लू बनने की प्रबल इच्छा। उम्र में अभी छोकरा ही है परन्तु दो बच्चों का बाप है। इस बार यहां जंगल की कटान में अपनी जनानी रमणी के साथ पेड़ों का चरान करता रहा।

सौणू घाल्लुओं में सबसे सयाणा है। इसे खुद याद नहीं कि वह कितनी दफा इस नदी में घाल्ल चला चुका है। इसकी गर्दन की चमड़ी पक्की और काली हो चुकी है परन्तु इसकी तीखी आंखों में नदी का रंग और चमक पूरी तरह बरकरार है। इसकी जांघों की पिंडलियों में पूरा कसाव बाकी है। सौणू की कमूं से खूब बनती है। दोनों इकट्ठे चल रहे हों तो बाप-बेटा ही लगते हैं।

बादल कहीं से बेमौसम घुमड़ कर आये और बरस पड़े। आग से दहकता जंगल शान्त होने लगा। बुझती आग का धुंआ फैलने लगा। बरखा की बौछार पर बौछार पड़ रही थी। धुएं से लिपटे पहाड़ पर कहीं-कहीं काले ठूंठ से पेड़ दिखने लगे। कल तक हरा-भरा जंगल आज राख व कोयला हो गया। बारिश तेज हो गई और घाल्लुओं के डेरे में पानी अन्दर तक आ गया।

"सौणू चाचु अच्छा ही हुआ, बरखा हो गई। जंगल तो जलने से बच गया।"

"हां, यह तो ठीक हुआ। पर कमूं अब हमारी घाल्ल, एक दो दिन रुक जायेगी। दरया में पानी बढ़ जायेगा। चल इस बहाव में दरईयां चलाकर नदी के तेवर देखें।"

कमूं दरईये में हवा भरने लगा। उसने मुंह फुला-फुला कर, खूब जोर के साथ हवा

भरी। सौणू ने उंगली से टनकाकर दरईयें में हवा परखी। दोनों बरखा के रुकने का इन्तजार करने लगे।

नदी में पानी चढ़ गया। बरसाती नदी की तरह मटमैला हो गया। लहरें उन्माद से उछल रही थीं। ज्योंही बरखा रुकी, सौणू और कर्मू दरईयां लेकर नदी के तट पर पहुंच गये। नदी का बहाव आज तैरने के लिए ठीक न था परन्तु सौणू, कर्मू को नदी के हर तेवर से वाकिफ करवा देना चाहता था। कर्मू ने जोर से "जय नदी मां" पुकारा और दरईयों को चलाते हुए नदी के बीचों-बीच डोलने लगा। दरईयां पानी की पहली लहर से ही बिगड़े घोड़े की तरह बिदकने लगा। कर्मू ने दरईयां पर अपनी पकड़ और बढ़ा दी। चप्पु को इस तेज पानी में चलाना कठिन हो रहा था। लहरें आसमान को छू रहीं थीं। उसने पैरों से चलाने की कोशिश की। नदी बरसात की बाढ़ की तरह डरावनी लगने लगी। आज उसको यह क्या हो गया। अगर घाल्लू ही पानी से डरने लगा तो उसे कौन घाल्लू कहेगा।

सौणू नदी के किनारे भाग रहा था। वह जान चुका था कि कर्मू के हाथों से दरईयां बेकाबू हो चुका है। वह उसे किनारे लगाने के इशारे करने लगा। वह अपने आप को कोस रहा था कि क्यों उसने इस तरह के पानी में उसे जाने दिया। बहाव तेज है। कर्मू बहुत आगे निकल चुका था। उसे पानी की लहरें कभी आकाश की ओर उछाल देतीं तो कभी अपनी ओर खींच लेती। चप्पू तो नकारा हो चुका था। अपने आप को वह चट्टानों से बचाता हुआ निकलने लगा। नदी की एक बड़ी लहर आई और उसने दरईयों को ऊपर उछाल दिया। कर्मू के हाथों से दरईयां छूट गया। उसने तैरते हुए एक ऊंचे पत्थर का सहारा लिया और उस पर टिक गया। दरईयां सामने के भंवर में घूम रहा था। चक्र की तरह घूमती इन लहरों में जाना खतरनाक है। उसे सामने लकड़ी के चट्ठों के पास खड़ा ठेकेदार दिखाई दिया। उसने पत्थर पर अपने आप को टिकाते हुए ठेकेदार को आवाज लगाई। ठेकेदार बिल्कुल नहीं हिला, वह हंसते हुए दांत निकाले देखता रहा। कर्मू ने बिना इन्तजार किये भंवर में छलांग लगा दी। घाल्लू के लिए दरईयां ही तो रोजी रोटी हैं। कर्मू के हाथ पैर इन चक्रदार लहरों की लपेट में आ गये। उसने बाहर निकलने की भरसक कोशिश की परन्तु बेकार। दरईयां भंवर से निकल कर नीचे बह गया। कर्मू छटपटाने लगा। उसे सबकुछ धुंधला दिखाई देने लगा। वह नदी की गहराई में डूबने लगा। सांसें घुटने लगीं तभी कोई उसे ऊपर की ओर घसीटने लगा। वह सिर के बालों से खींच कर उसे बाहर लाने की कोशिश में था। उसकी पकड़ पक्की थी। आखिर उसने कन्धे पर उठा कर उसे बाहर किनारे पर लाया। वह सौणू ही था। उसने कर्मू के पेट से पानी निकाला और उसके कपड़े खोल कर रेत पर लिटा दिया। सौणू उसे दिलासा दे रहा था कि घाल्लू को तो पानी में जीना है भला इसमें डूबने और मरने से क्या घबराना। कर्मू को डूबने की परवाह न थी, परन्तु उसे दुःख अपने दरईयें के पानी में बह जाने का था।

ठेकेदार भी कुछ मजदूरों के साथ उनके पास पहुंचा और दांत निकालते हुए बोला, "तुम पहाड़ियों के बस का नहीं है घाल्लू बनना"। कर्मू के जी में आया कि जोर से एक पत्थर ठेकेदार के दांतों पर मार दे।

दरईयां दरया में बह चुका था। दो-तीन घाल्लू उसे ढूंढने के लिए नदी के किनारे-किनारे काफी नीचे तक गये भी परन्तु पता नहीं अब तक वह कहां पहुंच गया था। नदी के

इतने तेज बहाव ने दरईयें को लकड़ी के तिनके की तरह बहा दिया। अब इतनी जल्दी नये दरईयां का इन्तजाम करना बड़ा मुश्किल था। यह आम भैंस की खाल से तो बनता नहीं। इसके लिए खास तरह की खाल तैयार की जाती है। कई दिन तक रगड़-रगड़ कर पक्का किया जाता है और इसे बनाना हर किसी चमार के बस का काम भी नहीं है। सौणू को छोटी धार की तराई में बसे एक बूढ़े चमार का पता था जो यह काम कर सकता था। परन्तु अब पैसे तो दोनों के पास नहीं थे। कर्मू ने अपने चरानी भाईयों से उधार मांग कर कुछ पैसे इकट्ठे किये और शाम को ही सौणू नया दरईयां लाने के लिए छोटी धार को रवाना हो गया। कर्मू को उसने दो गिलास शराब, घी के साथ पिलाकर—डेरे में सुला दिया। पर वह कहां सोने वाला है। उसके दिमाग में तो दरईयां उछालियां मार रहा था। घड़ी-घड़ी उसे ठेकेदार के चिढ़ाते हुए दांत दिख रहे थे। वह उठा और नीचे दरईयां की तरफ उतरने लगा।

शाम की धूप पहाड़ियों की चोटियों से धीरे-धीरे उठ रही थी। आकाश में कहीं-कहीं बादल पीले व सिंधूरी होने लगे थे। नदी में पानी उतर चुका था। अब वह अलसाये सांप की तरह रेंग रही थी। गोरखों की बस्तियों से धुआं उठने लगा था। वे काफी ऊपर अपनी झोंपड़ियों की तरफ काम खत्म करके धीरे-धीरे चढ़ रहे थे।

कर्मू को घर के ख्यालों ने घेर लिया। उसकी रमणी ने उसे कितनी बार इस नदी में पैर डालने को भी इन्कार किया था। उसका ख्याल है कि इस दरया का हमारे गांव पर श्राप हैं। तभी तो हर बरसात में कोई न कोई आदमी इसमें डूब जाता है या किसी की गाय या भैंस बह जाती है। पागल है रमणी भी, भला नदी मां क्या अपने बच्चों का बुरा चाहेगी। ये तो हमें ही खुद इसके गुस्से का ध्यान रखना चाहिए। अगर ऐसी शान्त नदी आज होती तो क्या मैं डूब सकता था। अब देखो कैसी धीरे-धीरे गाते हुए चल रही है। कर्मू नदी के संगीत के साथ पत्थरों पर उछलता हुआ चलने लगा। इस बार वह पक्का घाल्लू बनेगा। सौणू ने भी कहा है कि घाल्लू को नदी में पहली बार डूब जाना उसके लिए अच्छा ही रहता है। बुरे ग्रह टल जाते हैं। अब वह सालों-साल घाल्ल चलायेगा। घाल्ल की कमाई से रमणी के लिए नथनी खरीदेगा। एक भी गहना नहीं है, बेचारी के पास। उससे अब वह चरानी का काम भी नहीं करवायेगा। गांव में ही रहेगी। गाय बकरियां पालेगी। यहां चरान में तो सबकी आंखें उस पर लगी रहती हैं। वह ठेकेदार उसको कैसे घूरता रहता था। ठेकेदार का ख्याल आते ही कर्मू का चेहरा लाल होने लगा था।

अंधेरा होने लगा। घाटी में पतली-सी धुंध छाने लगी। नदी के किनारे ठण्ड बढ़ गई थी। ऊपर घाल्लुओं ने अपने डेरों के बाहर चूल्हे जला दिये थे। कर्मू भी अपने डेरे की तरफ चढ़ने लगा।

नये दरईयों का इन्तजाम हो गया। भला ये कभी हो सकता है कि सौणू ने किसी काम में हाथ डाला हो और वह न हुआ हो। सौणू अगले दिन दोपहर होने से पहले ही नये दरईयों को लेकर पहुंच गया। यह पहले जैसा तो नहीं था परन्तु इस पर लेटकर कर्मू ने इसका घुम नापा जो उसके बिल्कुल ठीक बैठा। कर्मू ने सभी घाल्लुओं में सवा सेर गुड़ बांटा और आज वह घाल्लुओं के कुनबे में शामिल हो गया। सौणू की देख-रेख में घाल्ल चलनी शुरू हुई।

आज मौसम ने भी साथ दिया। साफ आसमान और नदी का बहाव बराबर चल

रहा था। यही वक्त होता है शहतीरों को पानी में चलाने का। गोरखों ने ऊपर नाले से लकड़ी के तख्तों की नहर बनाई थी, जिससे शहतीरें पानी के साथ फिसलती हुई नदी के बीचोंबीच पहुंच जातीं। गोरखे एक-एक करके शहतीरों को नदी में छोड़ने लगे। सभी घाल्लू पानी में उतर चुके थे। कर्मू तो सबसे आगे निकल गया। वह आसानी से चप्पू चलते हुए शहतीरों को चला रहा था। जहां कहीं पत्थरों में लकड़ियां फंसनी शुरू हो जातीं वहां वह पहले ही निकाल कर घाल्लुओं का काम आसान कर देता। कर्मू खुश था। हवा भी अनुकूल चल रही थी। वह आनंद में ऊंचे बोल गाने लगा। दोनों ओर की घाटियों से उसकी आवाज टकरा जाती और प्रतिध्वनि फिर से लहरों में घुल जाती। नदी आज अपनी छाती पर कर्मू को बराबर डोला रही थी। वह पूरे आनन्द के साथ पानी में पैर चला रहा था। इस बीच एक बड़ी मछली ऊपर उछली। कर्मू ने उस पर ज़ोर से चप्पू मारा और मछली को बाहर रेत पर उछाल दिया। आज शाम का इन्तजाम हो गया था।

सौणू का दरईयां तेजी से कर्मू के पास पहुंचा। वह भी उसे खुश देखकर मुस्कराया। वह जानता था कि शुरू-शुरू में दरईयां तैराते हुए कितना मज़ा आता है।

"क्यों भई, कर्मू घाल्लू...ठीक चल रहा है सब, ज्यादा तेज़ी मत दिखाना...आगे वो सामने वाली चट्टानों के पास हमें रुक जाना है। वहां बहाव ठीक नहीं है।"

सचमुच यहां नदी बड़ी-बड़ी चट्टानों की ढलान से नीचे गिर रही थी। पत्थरों से टकराती हुई बहुत शोर कर रही थी। पानी उछलता हुआ दूध की तरह बिखर रहा था। शहतीरें यहां चट्टानों की खाईयों में फंसने लगी थीं। इन तक पहुंचना खतरनाक था और फिजूल भी। क्योंकि शहतीरें एक दूसरे से टकरा कर अपने आप ही निकल जाती थीं। घाल्लुओं ने दरईयें किनारे पर लगाये। थोड़ी देर सुस्ताये। खाने के लिए रोटियां निकालीं और फिर कन्धों पर दरईयां उठाये बतियाते हुए अगले सफर की ओर चलने लगे।

आधी से ज्यादा शहतीरों की घाल्ल आगे निकल चुकी थी। अब पानी गहरा और बहाव धीमा पड़ गया था। यहां पर चट्टानें नदी की गहराई में छिप गईं थीं। नदी का पाट भी चौड़ा हो गया था। घाल्ल अपने आप आराम से बह रही थी। सौणू कर्मू और दो-तीन घाल्लू तेज़ी से घाल्ल के आगे निकल गये। वे जल्दी-जल्दी चप्पू चला रहे थे। देवदार के जंगल पीछे छूटते जा रहे थे। शाम होने लगी थी। पक्षी नदी को आर-पार करने लगे थे। कस्बों के नजदीक जहां आखिरी काम घाल्ल को रोकने का था, यहां शहतीरों को इकट्ठा कर, ट्रकों पर लादकर आगे भेजा जाता था।

ठेकेदार स्वयं घाल्ल रोकने के काम की निगरानी कर रहा था। घाल्लू पानी पर तैरते हुए शहतीरों का बान्ध बनाने के लिए जुट गये। इन्होंने शहतीरों को रस्सियों से जोड़-जोड़ कर नदी के पाट पर बांध बनाया। सौणू ने इसके हर शहतीर पर खड़े होकर इसकी जांच की और दरईयों के एक किनारे से दूसरे किनारे पर चलकर इस बांध को परखा। शहतीर पहुंचने शुरू हो गये। घाल्लू इनको एक ओर किनारे पर इकट्ठे करने लगे। मज़दूरों ने चट्ठे लगाने शुरू कर दिये। शहतीर नदी में लगातार आ रहे थे। सारी नदी पर शहतीरों का फर्श बिछ गया। नीचे चलता पानी भी नज़र नहीं आ रहा था। अब यहां पूरा का पूरा जंगल तैर रहा था।

घाल्लू का काम अब पूरा हो चुका। दो-तीन दिनों में सारी शहतीरें गोरखों ने उठा देनी थीं। ठेकेदार का मन अभी भी भरा नहीं था। उसके हिसाब में पूरी शहतीरें यहां घाल्ल में नहीं पहुंची। वह इसका सारा दोष सौणू पर लगा रहा था कि उसने पीछे चट्टानों की ढलान के पास पूरी घाल नहीं निकाली। कर्मू ठेकेदार को अच्छी तरह जानता था। जब चरान का काम पूरा हुआ था तो भी चरानियों के पैसे कम करवाने के लिए उसने कई नखरे किये थे। वैसे ही अब वह कोई न कोई बहाना ढूंढ़ रहा था।

"लाला जी अभी पूरी घाल्ल के चट्ठे ही कहां लगे हैं। आप देखना एक भी शहतीर कम न पड़ेगा। कभी कभार इतनी बड़ी घाल्ल में एक-दो नग ऊपर नीचे तो हो ही जाते हैं", सौणू ने ठेकेदार को समझाते हुए कहा।

"हां-हां ठीक है। कल तक ठीक पता चल जायेगा। एक भी शहतीर कम हुआ तो घाल्लुओं की कमाई से ही काटूंगा। मेरा नुकसान और कौन पूरा करेगा। पैसे कोई पेड़ में तो लगते नहीं!"

सौणू ने ठण्डी हामी भरी और कर्मू को साथ लेता हुआ दूसरे घाल्लुओं के साथ अपने तम्बुओं में आ गया। उसने सोच रखा था कि वह घाल्ल खत्म होने की खुशी में ठेकेदार से दो-तीन बोतलें मांगेगा परन्तु यहां तो उल्टे वही उसे पड़ गया। खैर! कुछ न कुछ तो अब करना ही था। सभी की जेबों से पैसे-सिक्के इकट्ठे किये गये और कर्मू उधर दरया पार से आटे की चक्की चलाने वाले घराटी से चार बोतलें शराब ले आया। मछलियां जाल से पकड़ ली गईं और रात को तम्बुओं के बाहर आग जलाकर सभी घाल्लू अलाव के चारों और जम गये। मछलियां भुनी जा रही हैं। शराब अपना काम करने लगी। सब के चेहरों पर रौनक है और आंखों में अपना-अपना गांव हंस रहा है। काम खत्म हो चुका है। कल कमाई के पैसे लेकर अपने-अपने घर रवाना हो जायेंगे। इतने दिनों की थकान को सब खा-पीकर, नाच-गाकर उतार रहे हैं। कोई कांगड़े की धुन छेड़ देता तो कोई पहाड़ी नाटी नाचने लग जाता। दारू सबको प्यारी लगने लगी है। जैसे-जैसे इसका रंग चढ़ने लगा घाल्लुओं का झूमना और बढ़ने लगा है।

सबसे ज्यादा मजा तो कर्मू ले रहा है। उसकी घाल्लू बनने की इच्छा पूरी हो गई है। उम्र में सबसे छोटा होने से सभी उसे छेड़ रहे हैं। वह भी ठुमके लगा-लगा कर सिर पर पल्लू ओढ़कर औरतों की तरह नाच रहा है। उसे देखकर सभी हंस-हंस कर लोट-पोट हो रहे हैं कर्मू अलाव के पास से झूमते हुए उठा और नाचते-गाते हुए नदी के घाट की ओर चल पड़ा। उसके पीछे सौणू भी हो लिया। शराब सिर पर सवार है। कर्मू कभी चट्ठों पर चढ़ जाता तो कभी नाचते हुए नदी पर बांधे पुल पर दौड़ जाता। सौणू भी उसके साथ ताल मिला देता। दोनों इस रात में बांहों में बांहें डाले भूतों की तरह नाच रहे हैं। कर्मू को कुछ ज्यादा ही चढ़ गई है। नाचते-नाचते उसकी सांस फूल गई है। वह औंधे मुंह शहतीरों पर गिर पड़ा और बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगता।

"सौणू चाचु···चाचु, तू मेरा चाचु नहीं···तू मेरा बाप है। तूने मेरी जिन्दगी बचाई है। अगर तू न होता तो यह घाल्लू बनना, मुझे नसीब न होता···डूब गया होता···और एक वो है, जिसका हम काम करते हैं···ठेकेदार, मरवा दिया था उसने दांत चिढ़ा-चिढ़ा कर हंस रहा था साला उसके लिए हम आदमी थोड़े ही हैं, कटे हुए पेड़ हैं। जैसा चाहो बरतो आज मैं

इसका काम खराब करूंगा'''चल इधर से घाल खोल देते हैं। सारी की सारी शहतीरें बह जायेंगी'''मरेगा फिर ये, हम कहेंगे'''और काट जंगल'''और जला जंगल।"

सौणू ने कर्मू को छाती से लगाया और उसे बच्चों की तरह पुचकारते हुए समझाने लगा।

नहीं कर्मू'''नहीं, देख अब हम नशे में हैं। घाल्ल खोलने का गलत काम हम नहीं करेंगे इस घाल्ल के साथ हम सबकी कमाई और जिन्दगी जुड़ी हुई है'''अभी हमने अपनी कमाई भी कहां ली है'''जाने दे ठेकेदार को, अगर उसने तुझे बचाने की कोशिश नहीं की तो'''मैं जो हूं तेरे साथ'''हम सब हैं'''घाल्लू ही घाल्लू की जान बचाने को आयेगा'''देख तू आज घाल्लू बना है, तेरे लिए मैं नाच के दिखाता हूं, क्या थे उस घाटी के बोल'''। 'घाल्लुआ मजूरा हो, डेरा तेरा दूरा हो! कदी घरे आवणा!'

सौणू नाटी नाचने लगा। वह कर्मू को हंसाने के लिए जोकरों की तरह उछलने लगा। परन्तु कर्मू उदास सा, गुमसुम बैठा रहा। सौणू जोर-जोर से गाता हुआ सामने शहतीरों के चट्ठे पर चढ़ने लगा। कभी वह इस चट्ठे पर बैठकर गाने लगता तो कभी उठकर नाचने लग जाता। वह कर्मू को ऊपर बुलाने लगा। पर कर्मू तो वहीं बैठा रहा। उसे नाचता हुआ देखने लगा। अजीब है यह सौणू भी, कैसे नशे में मस्त नाच रहा है। एक बार इसे पूरी शराब चढ़ जानी चाहिए बस फिर तो यह नाचते-नाचते थकता ही नहीं। एक जोर की गड़गड़ाहट हुई। सामने चट्ठे के शहतीर खिसकने लगे। शहतीरें भारी आवाज से नीचे गिर रही थीं। इसी शोर में कर्मू को सौणू की दबी हुई भयानक चीख सुनाई दी। वह शहतीरों की तरफ भागा। सारा चट्ठा नदी पर बिखर गया था। सौणू कहीं नहीं दिखाई दे रहा था। नदी के पानी पर शहतीरें एक दूसरे से सट कर बिछ गई थीं। सौणू नीचे दब कर डूब चुका था। कर्मू पागलों की तरह सौणू'''सौणू, चीखते हुए शहतीरों को उलटने-पलटने लगा। परन्तु वह कहीं न निकला। आखिर वह हताश होकर रोने लगा और घाल्लुओं की तरफ भागा। सभी दारू पी कर सोये पड़े थे। कर्मू ने एक-दो को उठाया और सारा हादसा सुनाया। पर यह कोई मानने को तैयार ही न था कि सौणू घाल्लू भी डूब सकता है। वे उसके साथ नदी के तट पर आये और आस-पास ढूंढ़ने लगे। आवाजें देते हुए शहतीरों को एक तरफ उठाने लगे। परन्तु सौणू तो पता नहीं, नीचे पानी के बहाव में कहां तक चला गया था या किन चट्टानों की खाईयों में फंस गया था। सभी थक गये। अब तो सुबह पूरी घाल्ल उठाने पर ही कुछ पता लग सकता था। सभी सुबह का इन्तजार करने के लिए अपने-अपने तम्बुओं में चले गये परन्तु कर्मू तो वहीं नदी के किन्नारे घूमता रहा और परेशानी में बांध के पास सुबह तक सिसकता रहा।

सवेरे का उजाला धीरे-धीरे फूटने लगा। इक्के-दुक्के आदमी सुबह का कर्म निपटाने को दरया के किनारे आने-जाने लगे। धुन्ध धीरे-धीरे छट रही थी। तभी कर्मू को दूसरे किनारे पर ठेकेदार आता हुआ दिखाई दिया। शायद उसको किसी ने इस हादसे के बारे में बता दिया होगा। उसको देखते ही कर्मू आग बबूला हो उठा। उसको उसके चिढ़ाते हुए दांत याद आने लगे। वह सोचने लगा सौणू ने आखरी दम तक भी ठेकेदार का बुरा नहीं सोचा पर ठेकेदार ने हमेशा ही'''।

ठेकेदार पुल पर पांव रख चुका था। धुन्ध की वजह से वह धीरे-धीरे पांव टिका-टिकाकर चलने लगा। कमूं की आंखें लाल और हाथ गुस्से से कांपने लगे। वह चुपके से उठा और उसने अपने किनारे से पुल की रस्सी खोल दी।

कमूं जल्दी-जल्दी अपने तम्बुओं की तरफ जाने लगा। परन्तु उसके कान पीछे की ओर ही लगे थे। यह तो उसे पक्का यकीन था कि ठेकेदार को तैरना नहीं आता। परन्तु अगर किसी ने डूबते हुए देख लिया तो? जोर से एक चीख उठी'''कमूं के पांव रुके एक ख्याल आया कि वह उसे बचा ले परन्तु कमूं चुपचाप अपने रास्ते की ओर बढ़ता ही रहा। उसने मुड़कर देखा भी नहीं।

धूप निकलने के पहले ही सारे दरया पर मेला लग गया। लोगों के झुण्ड के झुण्ड पहुंच रहे थे। ठेकेदार के डूबने की खबर कस्बे में फैल गई। बहुत बड़े स्तर पर घाल्ल उठाने का काम शुरू हुआ पर किसी की भी लाश न मिल रही थी। सारी शहतीरें उठा दी गईं। नदी के किनारे-किनारे नीचे दूर तक आदमी दौड़े। पर किसी का कोई नामोनिशान न था।

दोपहर तक, कस्बे से कोई आधा मील दूर एक बड़ी चट्टान की तह से घाल्लुओं ने गोते लगाकर दो शव निकाले। शहतीरों के बीच गिरने-डूबने से दोनों शवों के चेहरे पहचान खो गये थे। कौन-सा शव ठेकेदार का है और कौन घाल्लू सौणू का यह पहचानना मुश्किल हो गया था।

[51/3 सायन मंडी, हि० प्र०]

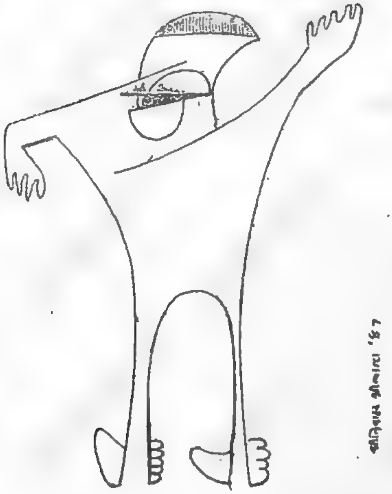

ओ हरामजादे

□ वीरेन्द्र जैन

घर में कोहराम मचा हुआ था। रह-रहकर एक ही आवाज कानों से टकरा रही थी, "ओ हरामजादे, ओ हरामजादे···"

शोरगुल के बीच काफी देर तक माजरा ही समझ में नहीं आया। यों इस घर में हो-हल्ला मचना कोई नई बात नहीं थी, मगर इस जोरशोर से और तीखेपन से कई दिनों बाद ही मच रहा था। जब तक शोरगुल कम हुआ मकान के बाहर-भीतर लोगों की भीड़ जुट गयी थी।

भीतर से जो आवाजें आ रहीं थीं, उनमें से एक स्वर मां का और दो स्वर उसके बड़े और मझले लड़के के थे।

मां ने कहा, "हां, हां, जा जहां सींग समायें जा। मैं तेरी नौकरानी नहीं हूं जो तुझे कपड़े धो कर दूं, इस्तिरी करके दूं, खाना बना कर दूं और तू गुलछर्रे उड़ाये। अपनी कमाई उस डायन (एक पड़ोसन के घर की तरफ इशारा करके) को लाकर थमा दे।"

बड़ा लड़का आये दिन मां से लड़ता ही रहता था। बात-बात पर तू-तड़ाक होती रहती थी। सभी जानते थे कि इनका यह लड़का घर के प्रति उदासीन है और एक पड़ोसी के प्रति सजग। इसी बात पर तब-जब कहा-सुनी हो जाती थी।

जवाब में बड़े लड़के ने कहा, "नौकरानी नहीं है तो फिर क्या है? कपड़े क्यों नहीं धो कर रखेगी? करती क्या है सारे दिन? तू क्या समझती है मैं खुद अपने कपड़े धोऊंगा···?"

बस, इतनी ही बात कह पाया था वह कि मझला लड़का दौड़ता हुआ आया और अपने बड़े भाई की कमीज का कालर थाम कर उसे घसीटते हुए कमरे से बाहर ले आया। फिर बोला, "खबरदार जो अब मां को गाली दी। अब तक बड़ा समझता रहा इसलिए कुछ नहीं कहा, पर अगर मां से बड़ा बनने की जुर्रत की तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।"

बड़े भाई को इस अप्रत्याशित वार ने कुछ क्षण के लिए पशोपेश में डाल दिया। मगर चंद सेकेंड बाद ही वह मां को छोड़ छोटे भाई से उलझ पड़ा, "अबे ओ मां के चमचे, अगर तुझे मां का इतना ही ख्याल है तो इससे कह मेरे कपड़े धो कर इस्तिरी करके रखा करे, समझा।"

"खूब समझा। पर यह मां है नौकरानी नहीं। अगर अब तूने मां से कपड़े धोने की बात कहीं तो तेरे सारे कपड़े उठाकर अंगीठी पर रख दूंगा। बड़ा आया कपड़े धुलवाने वाला। अबे गनीमत है कि तुझे यहां रोटी पकी-पकाई मिल जाती है। किसी दिन वह भी बंद करवा दूंगा," मझला बोला।

"अच्छा, तो पिताजी के दौरे पर जाते ही तुम दोनों मिलकर मुझे घर से भगाना चाहते हो ? पर याद रखना मैं ऐसे भागने वाला नहीं हूं ।' बड़ा लड़का व्यंग्य भरे लहजे में बोला ।

"हां, हां, तू कैसे भाग सकता है, अरे हरामजादे, तू भाग गया तो उस डायन के पांव कौन दबाएगा ? राशन कौन लाएगा ? तू कैसे भाग सकता है । तू तो मेरी छाती पर मूंग दलेगा और पलना झुलाएगा उसका, "मां ने बातों की डोर फिर अपने हाथ में खींचते हुए कहा । मगर बड़ा बिना कुछ कहे चुपचाप कमरे में आया, तीन दिन पुराने मैले कपड़े पहने, आलमारी से डायरी निकाली और बाहर चला गया ।

उसे मकान से बाहर जाता देख भीड़ छंटने लगी । मां ने उसका रास्ता रोक कर कहा, "अरे जाता कहां है ? खाना क्या मैं खाऊंगी तेरे हिस्से का ? जहां भी जाना हो चला जा पर खाना खा कर जाना ।"

मां को दरकिनार करके निकलने की कोशिश करता हुआ वह बोला, "बड़ी आई मनाने वाली। मुझे नहीं खाना, जा अपने लाड़ले को खिला जाकर ।"

मां रूआंसी-सी हो आयी। पर फिर न जाने क्या सोचकर एकदम गम्भीर चेहरा बनाकर बोली, "अच्छा तो तू जा। मैं अपने लाड़ले को ही खिला दूंगी । पर मेरी इतनी बात सुनता जा—अगर असल मां-बाप का है तो अपनी बात पर टिका रहियो। अब अगर मेरे हाथ का खाना खाया, मेरे घर आया तो मैं समझूंगी तू हरामजादा है ।"

बड़ा एक क्षण रुके बिना बाहर की तरफ चला गया । भीड़ भी नौ दो ग्यारह हो गयी। मगर मां देर तक उस का नाम ले-लेकर बुरा-भला कहती रही ।

शाम को बड़ा घर नहीं आया । मां ने कोई चिन्ता नहीं की । दो-चार गालियां दे दीं। उसके और अपने हिस्से का खाना गाय को खिला दिया। अगली सुबह भी लड़का नहीं आया । मां ने फिर गालियां दे दीं। खाना मेहतरानी को दे दिया । शाम को लड़का फिर नहीं आया । मां ने फिर गालियां दे दीं, मगर खाना गाय को नहीं खिलाया। सहेज कर रसोई में रख दिया । सोचा रात को जिस समय भी आयेगा । गरम करके खिला दूंगी । मगर लड़का नहीं आया रात भर ।

तीसरी सुबह मां ने खाना बना कर रसोई में रख दिया । रसोई का ताला जानबूझकर खुला छोड़ दिया, खुद कमरे में जा बैठी । दिन भर वहीं रही । सोचती थी लड़का झेंप रहा होगा। मुझे देखकर लौट जाता होगा । अब दिन में जब भी आयेगा तो खाना तो खा लेगा कम से कम तसल्ली से ।

पर लड़का नहीं आया । अब मां को चिन्ता हुई । कहां गया बेटा ? कहीं ... ! या फिर बिना टिकट पकड़ा गया हो और जेल में हो, या हो सकता है आज रात को ही आ जाये ।

शाम का खाना बनाने से पहले मां ने लड़के के तमाम कपड़े धोकर सुखा लिए। फिर छोटे लड़के के हाथों इस्तिरी करवाने भेज दिए ।

खाना तैयार हो गया, कपड़े भी इस्तिरी होकर आ गये, मगर लड़का नहीं आया। मां परेशान होकर बार-बार कहने लगी, "ओ हरामजादे आ जा । क्यों सता रहा है मुझे । अब कभी मना नहीं करूंगी कपड़े धोने को ।" मगर सुने कौन ! वह हो तब न ।

रात गहराने लगी। अड़ोस-पड़ोस के सब लोग आ गये पर बेटा नहीं आया । मां परेशान, बदहवास-सी कभी किसी के घर गयी, कभी किसी के, पर कोई भी क्या मदद कर सकता

था, सिवा सांत्वना देने के ?

लेकिन केवल सांत्वना से तो मां का पेट नहीं भरा जा सकता था, मन भी नहीं, सो नहीं भरा। वह हर तरह से भूखी की भूखी रही।

मां क्या करे ? उसने सभी पड़ोसियों से हाथ जोड़ कर विनती की। "मेरा बेटा कहीं दिखाई दे तो कहना घर चल। मां ने खाना बना रखा है, कपड़े भी धुलवा कर, इस्तिरी करवा दिये हैं। अब वह कभी तुझे नाराज नहीं करेगी। जरूर से जरूर उसे पकड़कर, फुसला-बहला कर साथ लेते आइएगा।"

शाम को जब सभी पड़ोसी घर आ गये मगर बेटा किसी के भी साथ घर नहीं आया तो मां और परेशान हो गयी। मझला भी दुविधा में पड़ गया। कल तक वह भी यही सोच रहा था कि भैया अपने आप आ जायेगा। रात ही को वह नाते रिश्तेदारों के घर, भैया के दफ्तर और वहां भी न मिलने पर उसके मालिक के घर पता लगा आया। मालिक ने बताया वह कई दिन से दफ्तर नहीं आ रहा। उसका दफ्तर के किसी कर्मचारी से बैर भी चल रहा था।

बस, अटकलें लगने लगीं। हो न हो, उसी ने···

मां की चिन्ताओं का अन्त नहीं था, बेटे ने कई दिनों से पुराने कपड़े पहन रखे हैं, जबकि दो दिन से ज्यादा किसी कपड़े को पहनता ही नहीं था। खाना भी कहां से खाता होगा ? उसने खुद कितने दिन से खाना नहीं खाया है, यह बात मां को अब याद भी नहीं रही। उसे रह-रहकर भय सताने लगा। इसके पिताजी आयेंगे तो क्या जवाब दूंगी ? कहां से लाकर दूंगी बेटा, कहां पाऊंगी इतना बड़ा लाल ?

उसी रात मां ने चारपाई पकड़ ली। बाकी लोग तलाश करते रहे। जहां कहीं भी उसके होने की उम्मीद बन्धती वहां जा पहुंचते मगर नाकाम वापस आते रहे। इसी तरह पूरा एक सप्ताह गुजर गया मगर बेटा नहीं आया। मां सूखकर कांटा हो गयी। न दवा खाती न न खाना। पानी तक पेट में जाना दूभर हो गया। काया काली पड़ गयी। आंखें हरदम दरवाजे की तरफ टकटकी लगाये रहीं। सिरहाने के नीचे बेटे के तमाम कपड़े रख छोड़े।

अचानक एक रात मां हड़बड़ा कर उठी और दौड़ती हुई दरवाज़े के बाहर खड़े किसी आदमी को बालों से पकड़ कर अंधेरे में ही मकान के भीतर घसीट ले गयी। थोड़ी ही देर में मां की आवाजें सुनाई देने लगीं, "ओ हरामजादे, तुझे मां को परेशान करने में बहुत मजा आता है न, कहां चला गया था तू ? अब क्यों आया ? जा जहां सींग समाये वहीं जा, पर जाने से पहले मेरा गला दबाता जा।"

मां की आवाज सुनकर बहुत से पड़ोसी वहां आ पहुंचे। मैले कुचैले कपड़े पहने, बिलकुल दुबला-पतला-सा एक लड़का मां को बमुश्किल संभाले खड़ा है···लग रहा था अब नहीं तो अब दोनों गिर पड़ेंगे।

रोशनी होते ही बड़े ने मां की तरफ देखा तो अवाक रह गया। मां की कृष्का या देखकर उसे ग्लानि हुई। तभी वह झट उसके पैरों में लोटकर बोला, "मां, मुझे माफ कर दे मां, मैं फिर कभी तुझे इस तरह नहीं सताऊंगा।"

मां अपने पैरों को उसके हाथों में से छुड़ाने की कोशिश करती हुई बोली, "ओ हरामजादे, तू तो वाकई हरामजादा निकला···" और अपने को संभालने में असमर्थ मां धड़ाम से बड़े के शरीर पर गिर पड़ी।

[द्वारा : सारिका, 10 दरियागंज, नई दिल्ली-2]

मां का दूध

☐ पैक के जू

दूसरे विश्व युद्ध के दौरान जापानी हुकूमत ने कोरियाई विद्यार्थियों को सेना में 'स्वयं सेवक' भर्ती होने के लिए विवश किया। वे सेना में एक साथ मिलकर नहीं रह सकते थे, उन्हें जापानी सैनिकों के साथ तितर-बितर कर दिया गया। चुंगतैहो नाम का ऐसा ही एक कोरियाई विद्यार्थी भर्ती हुआ और उसे उत्तरी चीन भेज दिया गया। युद्ध समाप्त होने पर वह कोरिया वापस आया और उसने अपनी कहानी सुनाई।

सेना छोड़कर चुपके से यूनान पहुंचने से पहले तैहंगशन्मो में मैंने युद्धाभ्यास देखा। मेरी कम्पनी में किम चोल नाम का एक दूसरा कोरियाई जवान था। वह देहात की एक विधवा का इकलौता बेटा था। उसे भी सेना में भर्ती होने के लिए विवश किया गया था और उत्तरी चीन भेज दिया गया।

एक सिपाही को युद्ध भूमि में अपने यश और कीर्ति की कोई इच्छा नहीं होती और न ही उसकी अपनी कोई इच्छा होती है। वह सिर्फ मौत से खेलता है। अन्य सिपाहियों की भांति जो मैं उस देश के लिए बलिदान कर रहा था, यह मेरी अपनी इच्छा के मुताबिक नहीं था, लेकिन मेरी भावना उनकी तरह साधारण नहीं थी। मेरा दिल भारी था, क्योंकि मैं अपने देश के लिए नही लड़ रहा था। इससे अधिक, मुझमें कड़ुवाहट यह थी कि मैं अपने देश के खिलाफ़ दुश्मन की तरफ से लड़ रहा था। मैंने अपनी राइफ़ल की गोली का निशाना अपने ही देश-वासियों का बनाया हुआ था। जो दूसरी तरफ की सेना में एक सच्चे स्वयं सेवक के रूप में भर्ती हुए थे और कोरिया के उद्धार के लिए उनका यह प्रशंसनीय कदम था। मैंने विरोध करना चाहा पर मेरी इच्छाओं का दमन कर दिया।

जब मैं किम के साथ अकेला था, मैंने उससे कहा, "हम कोरियाई हैं।" उसने मेरी बात सुनी लेकिन वह एक साधारण और अनजान लड़का था। मेरी बात वह समझ नहीं पाया। मैंने उससे साफ शब्दों में कहा, "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम कोरियाई हैं।" इस पर उसने कुछ भाव अवश्य जताए, लेकिन मैं नहीं जानता वह मेरी भावनाओं को कितना समझा होगा। एक क्षण बाद मैंने पुनः उसे याद दिलाया, "क्या तुम भूल जाओगे कि दूसरी तरफ 'एट्थ रूट आरमी' में कोरिया के सही मानों ने स्वयं सेवक हैं।" इस समय उसने सिर हिलाया और उसके चेहरे से लगा कि वह मेरी बात का अर्थ समझ चुका है। इसके बाद हमारा उद्देश्य बुरा ही रहा।

कभी मैंने एक स्वप्न देखा, किम और मैं जापानी सेना को छोड़कर 'एट्थ रूट आर्मी' में

मिलने को जा रहे हैं। किम और मैं बड़ी सतर्कता से एक पहाड़ी की ओर रेंगकर बढ़ रहे हैं। संतरी लाइन पार करके जब हमने सांस ली, तो हमें एकाएक गोली की आवाज सुनाई पड़ी। और उसके थोड़ी देर बाद तेज पदचाप भी सुनाई दी।' हमें दौड़ना चाहिए। मेरा हाथ पकड़ो। हमने दौड़ना शुरू किया।

दूसरे क्षण किम गोली की आवाज से आंतकित हो उठा और निराशा की चीख मारता वह गिर पड़ा। वह बुरी तरह घायल हो गया। 'क्या मुझे भाग जाना चाहिए ?' नहीं, मृत्युशया पर पड़े मित्र को छोड़कर मैं नहीं जा सकता था। मैंने सोचा। मैं हकलाने लगा। जापानी सैनिक हमारे करीब आ पहुंचे थे और हमनेअपनी जान के लिए लड़ना शुरू कर दिया। घमासान गोलीबारी। इस बीच मुझे एक आवाज सुनाई पड़ी, "चुप्प करो, चुप्प करो। क्या बात है ?" एकाएक जब मैंने अपनी आंखें खोली, वहां न कोई पहाड़ी थी और न ही भीषण युद्ध चल रहा था, बल्कि मैं तो अपने तम्बू में पसरा-पसरा खर्राटे भर रहा था।

"तुम क्यों चिल्ला रहे हो ?" यह मेरे एक वरिष्ठ अधिकारी की आवाज थी। मैं एकदम सम्भल गया।

दूसरी बार, जापानी कमाण्डर का मुझे और किम को गोली मारने के आदेश मिलने से पहले हम दोनों चुपके से अंधेरे में भाग निकले थे। यह भी स्वप्न था। कुछ सपनों में मैं अकेला ही सेना से भाग निकला था। मैं कंगाल और निरीह बन गया था। एक दूसरे स्वप्न में मैं भगोड़ा बनकर 'एटथ रूट आरमी' में जा मिला था। दुर्भाग्यवश उनको मेरे प्रति गलतफहमी हुई और उन्होंने मुझे जापानी सैनिकों के साथ जेल भेज दिया। इन सभी दुःस्वप्नों में मुझे निराशा मिलने से भी अपनी अग्रिम कारवाही जारी रखी। जब-जब मुझे किम से व्यक्तिगत रूप में बात करने का मौका मिलता, मैं जापानी सेना से भाग निकलने और उनके दुश्मनों से जा मिलने की सोचता।

अन्त में मैंने किम को भाग निकलने के लिये तैयार कर लिया।

तैहंगशन्मो युद्ध में किम घायल हो गया। उसे अन्य घायल सिपाहियों के साथ 20 मील पीछे भेज दिया गया। मैं उस समय विषाद और एकाकीपन में घुटन-सी महसूस करने लगा। फिर भी मेरी आशा बलवती थी कि मैं जैसे अपने माता-पिता एवं दोस्तों के लिए युद्ध में जूझ रहा हूं। लेकिन युद्ध के मैदान में मेरे ऊपर कहर ढह गया। मैं अपने एकमात्र कोरियाई मित्र किम तैहो से अलग कर दिया गया था जो कि मेरे साथ भाग निकलने के लिए वचनबद्ध था।

दो हफ्ते बाद युद्ध समाप्त हो गया।

मुझे किम से मिलने का मौका मिला। सोचने लगा कितना प्रसन्न होऊंगा—कितना प्रसन्न होऊंगा...उसको देखकर और वह भी मुझे देखकर कितना खुश होगा। मिलने की उतावली में मैंने अपना घोड़ा अस्पताल की ओर मोड़ दिया। जब मैं वहां पहुंचा, मैंने देखा कि किम के घाव मेरे अनुमान से कहीं अधिक बने हुए थे। उसकी आंखें पट्टियों से बन्द थीं। वह दर्द से कराह रहा था। मेरा उसके पास पहुंचने तक का आभास उसे नहीं हुआ। मैं उसके समीप गया और बोला, "अरे कनेयमा !" इस नाम से उसे सम्बोधित करने पर मैंने स्वयं को कृतज्ञ माना ; यद्यपि वह उसका असली नाम नहीं था। जापानी हुकूमत के आदेश पर उसका नाम बदलकर उस नाम के समतुल्य जापानी नाम रख दिया था। इस हद तक वे हमारी इच्छा को नष्ट कर देने की कोशिश करते थे।

एकाएक उसे इस नाम से पुकारने पर मुझे घृणा हुई। क्योंकि मैंने उसको वास्तविक नाम से सम्बोधित नहीं किया। कई बार मेरे पुकारने पर भी उसने कोई उत्तर नहीं दिया। मैं सोचने लगा, कहीं इस नाम से पुकारने पर उसको ठेस पहुंची हो। मैंने पुनः उसके असली नाम से जोर से पुकारा—"कनेयमा।"

इस बार भी उसने जवाब नहीं दिया।

उसी समय डाक्टर के आने पर मुझे मालूम हुआ कि किम अंधा ही नहीं, बल्कि बहरा भी हो चुका है। उसके कर्णपट फट चुके हैं। जैसे-जैसे मैं उसकी दयनीय हालत से परिचित होता गया, मैं उसे अपनी बाजुओं में उठाकर हृदय से लगाना चाहता था। मैंने उसका हाथ कसकर पकड़ लिया। उसने कांपते हुए पूछा, "यह कौन है?" जापानी में बोलने का उल्लंघन कर वह कोरियाई में बोला था। वह उत्तेजित होकर पुनः बोला, "यह मेरी मातृभाषा है, क्या यह मेरी मातृभाषा नहीं है? वह कहते जा रहा था। मैं उसे बिना किसी पूर्व सूचना दिये मिला था। उसके हाथ को अपने सीने से लगाते हुए मैंने कहा, "यह मैं हूं मत्सुमुरा—ओह, नहीं चुंगतैहो,"'' यद्यपि मुझे यह मालूम हो चुका था कि वह मेरी आवाज नहीं सुन सकता, लेकिन कोरियाई नाम लेकर ही मुझे तृप्ति मिली। वह बोला, "मेरी मां की क्या कोई खबर नहीं आई। तुम उत्तर क्यों नहीं देते। मरने से पहले मैं अपनी मां से मिलना चाहता हूं। मुझे मेरी मां से मिला दीजिए।"

मां से मिलने की धुन उसमें बढ़ती गई। मेरा कण्ठ भर आया और मैं उसके पीछे बैठ गया। किम की नष्ट हुई आंखें, बुरी तरह घायल हुए कान और एक गोली का उसके पास से गुजरना उसके इस अहसास को पाना था कि वह अब अधिक जिन्दा नहीं रह सकता। एक नर्स ने मुझे बताया कि रोज ही वह अपनी मां के बारे में पूछता है कि मरने से पहले वह अपनी मां से मिल पाएगा या नहीं। दूसरे दिन भी मैं वहीं पर मौजूद था। एक दूसरी नर्स आई थी। उसने उसका हाथ उठाया तो वह चीख पड़ा, ओह "मां, मां!"

नर्स की आंखें छलछला आई थीं। मेरा दिल भी जार-जार हो गया। नर्स जोर-जोर से सिसकने लगी। मैं नर्स को सान्त्वना दिलाना चाहता था लेकिन ऐसा सम्भव नहीं था। नर्स को स्पर्श करना सम्भव नहीं था।

एक दिन किम के नजदीक एक कागज का टुकड़ा पड़ा था। उसने उसे छुआ, उसे उठाया और बोला, "मुझे सन्देह है कि यह तार मेरी मां का भेजा हुआ है।" उसने मुझे पढ़ने के लिए दिया। अस्पताल में उसकी हालत गम्भीर और सोचनीय बन गयी थी।

मेरे पास अब कोई चारा भी नहीं था सिर्फ वहां मौजूद रहने के दिल पर एक बोझ-सा आ पड़ा था। यदि वह पढ़ने-लिखने की हालत में होता तो मैं कुछ शब्दों को उसकी खाल पर या हथेली पर लिखकर उसको समझने की कोशिश करता। ऐसा करना भी सम्भव नहीं था। मेरी डाक्टर एवं नर्स से पूछने की मंशा हुई कि क्या उसकी मां को इसकी खबर दे दी है? मैं यह नहीं सोच सका कि उनको इस गरीब की हालत पर कोई आपत्ति होगी। अपरिचित सिपाही, फिर भी उनका उत्तर 'हां' में था। मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ और मैंने पुनः स्पष्ट किया, "क्या सच! क्या आप सच कह रहे हैं?"

उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि उसकी मां को खबर भेज दी है। मुझे जरा अफसोस हुआ—यह जापानियों के लिए आवश्यक भी था कि वे कोरियाई सैनिकों की खबर उनके माता

पिता तक पहुंचाकर अपना अच्छा प्रभाव उन पर जमा सके। उसी समय मैंने नर्स से पुनः पूछा, "क्या कोई उत्तर मिला है।"

"नहीं" वह बोली।

उसी दिन दोपहर के बाद एक सैनिक गाड़ी रसद और दवाइयां लेकर अस्पताल पहुंची उसमें कुछ सैनिक और सफेद पोशाक में एक औरत थी। मैंने अनुमान लगाया, यह औरत किम की मां हो सकती है। मेरा अनुमान सही निकला। वह एक कोरियाई महिला थी। किम की मां यानी मेरी भी मां। लेकिन वह एक स्वदेशी महिला थी। वह मनोरंजन के लिए यहां लाई गई थी। उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर वह मुझे परिचित-सी लगी। और मुझे एक शांति की अनुभूति-सी हुई।

मेरे लिए वह महिला किम की मां थी। मैंने झुककर उसको प्रणाम करना चाहा। लेकिन ऐसा कर नहीं सका। मैं उसके लड़के के युद्ध में घायल होने का जिम्मेदार नहीं था। फिर भी मुझे ग्लानि सी हुई। मैं उससे मिला, और बातें कीं। मैं उसे डाक्टर और नर्स के साथ किम को दिखाने भी ले गया जैसे किम के बैड पर पहुंचे उसकी पट्टी बंधी आंखों को देखा, तो व महिला बहुत चकित हुई। वह चीखने लगी। "इंचोल!" उसने किम के हाथ कसकर पकड़ लिए। लेकिन वह एक मां की सफल भूमिका नहीं निभा सकी। वह किम से बिल्कुल अपरिचित थी। उसने पुनः कहा "ओह इंचोल, मैं तुम्हारी मां हूं। मैं यहां हूं।"

इस पर किम बोला, "यह कौन है?"

"मैं हूं। तुम्हारी मां।"

उस महिला ने मां का प्यार देने की बहुत कोशिश की। उसकी आंखें भी छलछला आई थीं। उसकी महानता पर मैं सोचने लगा था। यदि उसकी जगह पर मैं होता तो मैं बिना किसी अवरोध के जोर-जोर से चीखने लगता, मैंने उसी समय उसे बताया कि किम अंधा ही नहीं बहरा भी है।

मेरा अपाहिज मित्र मां के प्यार से अछूता ही रहा। कमरे में उपस्थित हम सबने किम को उसकी मां से मिलाना चाहा, मगर सभी प्रयास विफल हो गए। मैंने उसका हाथ पकड़ कर मां के हाथ में दिया। शायद उसने सोचा कि यह मां का हाथ नहीं किसी नर्स का हाथ है। मां समीप खड़ी थी। फिर भी वह पूछ रहा था, मेरी मां आई या नहीं? मां को तार भेजा भी या नहीं।

मां का हौसला टूटता गया। वह निराश होकर बोली, "यह मैं हूं। मैं तुम्हारी मां। इंचोल क्या तुम मुझे नहीं पहचान पा रहे हो?"

किम मां को पहचान नहीं सका था।

मां ने अपनी उंगलियों को उसके गालों पर फेरा, उसकी बांहों को झकझकाया और अन्त में उसे चूम लिया।

लेकिन किम ने मां के प्यार को अपमानित कर दिया। क्योंकि वह उसकी मां न होकर कोई अन्य महिला थी। केवल मां ही नहीं, मैं मेरा अपनत्व और अन्य जो इस दृश्य के प्रत्यक्षदर्शी थे। सबमें क्षोभ और बेचैनी बढ़ गई। वह गरीब महिला लगातार घण्टे भर तक उसको मां की ममता और प्यार देने की असमर्थता से निराश हो उठी।

अन्त में वह भूल गई या फिर उसने हम सब की उपेक्षा करके अपना ब्लाउज ढीला

किया। अपने स्तन बाहर निकाल कर किम को स्तन पान कराने लगी। पहले इंचोल संदिग्ध था। उसी समय उसने असाधारण बनावट को महसूस किया। उसने स्तन को छूआ। मां के कंधों को स्पर्श किया और चिल्लाया, "मां!"

वह प्रसन्न होकर मां के सीने से लग गया।

नर्स पहले से ही आंसू बहा रही थी।

"मां !" मैंने भी मन-ही-मन कहा। और आंसू गालों से होकर कब से बह रहे थे—पता ही न चला।

यही कहानी का अन्त है। लेकिन मैं कुछ शब्दों को इसमें जोड़कर स्पष्ट करना चाहता हूं। मेरे आंसू छलछला रहे थे। मैं भी चिल्लाया, "मां" ।मैं अपने दोस्त को मरते देख रहा था। उसी क्षण मेरी आंखों से इंचोल की मां की सूरत गायब हो गई मेरी अपनी मां का चित्र बन पड़ा था। वैसे मैं अपनी मां को पिछले सालों से खो चुका था। यकायक मां की स्मृति भी धूमिल पड़ गई। आंखों में अपनी मातृभूमि का चमकता लहलहाता दृश्य देखा। जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता। मेरी मां, मेरी मातृभूमि जिसके लिए जीवित रहने की कसमें इंचोल के साथ खाई थीं। मैं जीवित रहूंगा—लड़ता रहूंगा। अन्ततः मैं आज अपनी मां के अन्तः स्थल में हूं।

[अंग्रेजी से अनुवाद : हरिसुमन बिष्ट]

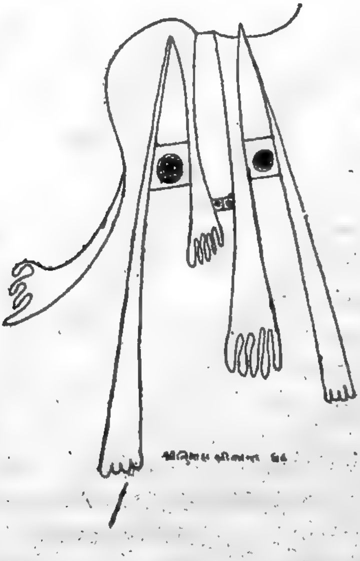

कविता

नोबल पुरस्कार, 1987 से सम्मानित कवि

जोजफ ब्राद्स्थी की कविताएं

भविष्यवाणी

हम जायेंगे और साथ-साथ रहेंगे किनारे पर
विशाल बांध काट देंगे हमें महाद्वीप से।
हमारे गोल कमरे के घेरे में बिखेरेगी
ऊष्म आलोक एक घरेलू लालटेन।

ताश के पत्तों में युद्ध करेंगे हम और दाग
लगा लेंगे पागल लहरों के गर्जन के लिए।
खांसेंगे धीमे-से, या शब्द चुप आह
जब भी अधिक कर्कश हो जायेगी हवा।

मैं वृद्ध हूंगा और तुम युवा
पर, जैसा कि नवयुवा कहते हैं, हम गिनेंगे समय को
जो हमें छोड़ चुका है—जब तक नया युग नहीं आता—
दिनों में, सालों में नहीं।
अपने छोटे से द्वीप में
हम एक घरेलू बगीचा लगायेंगे—तुम और मैं।
दरवाजे पर सीपियां कड़कड़ायेंगी
और हम पियेंगे अष्टपद सूरज की किरणें।

झपटने दो ग्रीष्म की बरसात को हमारी ककड़ियों पर
एस्किमों की तरह धूप से जलकर ताम्बई हो जायेंगे हम
तुम हौले से फिराओगी अपनी अँगुलियाँ
मेरे गले की कुंआरी 'बी' पर

जहां धूप जला नहीं सकी होगी मुझे।
मैं अपनी हँसुली देखूंगा आइने में
और एक लहर प्रतिबिम्बित मेरी पीठ पर।

सर्दियां आयेंगी, निर्भय,
और हमारे छप्पर को मरोड़ कर तोड़ देंगी।
आन्द्रेई रखेंगे हम अपने बच्चे का नाम
या अन्ना, यदि बची हुई तो,
कि हमारी रूसी ज़ुबान, छोटे झुर्रीदार चेहरे पर छपी,
भुलाई न जा सके कभी
हमारी वर्णमाला का पहला स्वर
एक माह का विस्तार है
और वह सुरक्षित रहेगी भविष्य के लिए

हम खेलेंगे ताश का युद्ध
जब तक ज्वार की लौटती कुटिलताएं
खींच नहीं ले जाती हमें
—हमारे सारे पुरुषों के साथ
नीचे और दूर।
हमारा बच्चा ताकेगा चुपचाप एक पतंगे को
बेखबर कि कभी वह भिड़ेगा हमारी लालटेन से
लेकिन वक्त आयेगा
जब हमारे बच्चे को बताना होगा रास्ता अपना
उसी बांध में से गुज़र कर
जो महाद्वीप से काटे हुए हैं हमें।

क्रिसमस

समझदार लोग भुला देंगे, तुम्हारा नाम
कोई सितारा नहीं चमकेगा तुम्हारे सिर के ऊपर
होगी केवल वही क्लान्त ध्वनि—
गरजती झंझा का भग्न होता स्वर।
परछाइयाँ उतरेंगी तुम्हारी थकी आँखों से
सिरहाने की मोमबत्ती गलने के साथ-साथ
मोमबत्तियों के चुक जाने तक
रातों को पालता है कैलेंडर।

क्यों है यह उदास स्वर ?
एक जाना-पहचाना लम्बा गीत।

फिर बजता है वह। बजने दो।
बजने दो उसे इस रात
—मेरी मृत्यु की घड़ी में—
आँखों और होठों की कृतज्ञता की तरह
उसके लिए
जो कभी सुदूर आकाश तक
उठा देता है हमारी निगाह।

चुपचाप तुम ताकते हो दीवाल
तुम्हारे मोजे फट गये हैं : कोई उपहार नहीं।
साफ़ है कि अब तुम बहुत बूढ़े हो
अच्छे सन्त मिथ में विश्वास के लिए
बहुत देर हो चुकी है चमत्कारों के लिए
—पर, अचानक, अपनी आँखों को उठाते हुए
ऊपर स्वर्गिक आलोक की ओर,
तुम महसूस करते हो :
एक उपहार है तुम्हारी ज़िन्दगी।

[अंग्रेजी से अनुवाद : नन्दकिशोर आचार्य]

मैं और वह

□ ज़िया सिद्दीकी

मैं

दस्ता-दस्ता बढ़ो
और चढ़ो चोटियाँ
खुद-फ़रेबी की
उसने चोटी से मुझ से कहा
मैंने पूछा
कहां हैं वो दस्ता ?
दस्ते कैसे बने ?
बुद्ध की जानी-पहचानी मुद्रा
बना कर

वो गुम हो गया
अपनी ही ज़ात में
मैं तलहटी में था मुन्तज़िर
मुद्दतों बाद उसने
खोला नज़रों का द्वार
बोला
दस्ता हर एक शख़्श है
उसके पीछे चलो
मैं चला उसके पीछे
यानी खुद अपने पीछे
मुद्दतों बाद मुझ को लगा
मैं जहां से चला था
वहीं पर हूं अब भी

मैं मुड़ा देखने
खींचता कौन है
रोकता कौन है मुझको बढ़ने से
चोटी की जानिब
देखता हूं
अपने पीछे मैं ख़ुद था
और बहुत दूर तक
सिलसिला था पहाड़ों से ऊंचा
अपने होने के एहसास का
दोस्त भाई बहन
बूढ़े मां-बाप
बच्चे
मेरा पूरा मुहल्ला
टोले-टोले बसा पूरा गांव

मैंने चोटी से नज़रें उतारीं
समन्दर की जानिब बढ़ा
सोच कर
जितनी ऊंची है चोटी
उससे गहरा
समन्दर का दिल होगा
उसने चोटी से ताना दिया
और हिक़ारत से देखा
बुद्ध की जानी-पहचानी
मुद्रा बना कर
वो गुम हो गया
अपनी ही ज़ात में
मैं कि कुछ देर पहले जो ख़ुद
अपनी ही ज़ात के
एक दस्ते का सालार था
सबसे पीछे था
एहसास के कारवां में
मुतमइन था मगर
उसका हिस्सा तो था

वहं

बिस्तर में जो लेटा है
वह
मैं हूं या कोई और
बरसों है किया ग़ौर
कुछ भी न समझ पाया
थक-हार के आख़िर को
आदत ही बना ली है
अब देखना ख़ुद ही को
ख़ुद ही से अलग रख कर

बिस्तर पे जो लेटा है
कुढ़ता ही तो रहता है
कुछ भी तो नहीं करता
मैं उसको उठाता हूं
उठ जा मेरे भाई
उठ जा तू मेरे भाई
और देख ज़रा मंज़र
सूरज के उभरने का
दुनिया के संवरने का
चिंताओं का मारा वह
बस लेटा ही रहता है
मैं उससे अलग होकर
यह सोचता रहता हूं
सोना मेरी आदत थी
सोता है कोई और
बरसों है किया ग़ौर

बिस्तर पे जो लेटा है
बस ख़्वाब ही बुनता है
कोशिश नहीं करता
मैं उसको उठाता हूं
उठ जा मेरे भाई
ईज़ल पे खड़ा हो जा

हर ख़्वाब की तितली को
कैन्वस पे सजा दे
तस्वीर बना दे
वह कुछ नहीं करता
बस लेटा ही रहता है
मैं उससे अलग होकर यह सोचता हूं
ख़्वाबों में जिये जाना
मजबूरी रही मेरी
जीता है कोई और
बरसों है किया ग़ौर

बिस्तर पे जो लेटा है
मैं उसको उठाता हूं
उठ जा मेरे भाई
छुप जा तू कहीं जाकर
छुपना न अगर चाहे
हथियार उठा ले तू
दरवाज़े पे बैठे हैं
दहशत के कई ताजिर
वह कुछ नहीं करता
बस लेटा ही रहता है
बन्दूक-सी चलती है
कुछ ख़ून-सा बहता है
मैं उससे अलग होकर
यह सोचता रहता हूं
मरना था मुझे लेकिन
मरता है कोई और
बरसों है किया ग़ौर

[लोक संपर्क विभाग, हि० प्र०, शिमला-171002]

तीन कविताएं

□ केशव

सूरज

छज्जे पर कुहनियां टेके
कुछ पल
झांकता रहा
सुनसान
अंधेरी गली में
सूरज
फिर
सहमे-सहमे
उतर कर
थपथपायी
गली की मुंदी पलकें

निष्प्राण नहीं है
गली की देह
जानकर
खुशी से फैला कुछ
फिर फैलता चलता गया

जीवन लौटता है
कुछ-कुछ ऐसे ही
अंधेरे की मांद से

द्वार-द्वार खटखटाता
अपनी खुशी को

दाना-दाना बिखेर
दहलीजों पर
बटोरता
भीतर फैले कुहासे को
चुटकी
चुटकी
कितनी दरारों में
फंसकर
होता चीथड़ा
चीथड़ा
कतरनें
लपेटता देह पर

खबरों के पोखर में
लगाता डुबकी
अपने होने को
सौंपता
अपने ही हाथों
कदम-कदम
बक़्त है सूरज
समय की गलियों में

एक हम हैं
कि उसे पकड़कर
रखना चाहते हैं अपने पास
सिर्फ अपने-अपने लिए

मूड

सूखे पत्तों से
क्यों भर जाती
कभी-कभी
मौसम की डाल
उदासी की खूंटी पर
लटक जाता
फटे हुए कोट की तरह हाल

भरता कानों में
बूंद
 बूंद
 सूनापन
छीज जाती हर ढाल

एक सूखी चरागाह
हो जाती दुनिया
मन
एक निश्शब्द ताल

होंठों पर
टंग जाते शब्द
 खाली घोंसलों की तरह
घात लगाए बैठा
बहेलिया
रह-रहकर
 फेंकता जाल

कभी-कभी
ऐसा क्यों होता है
कि ऋतुओं को लग जाता घुन
हवा डिब्बों में बंद
धूप बदल जाती एक कैंची में
दरख्त पंजों में
और एक आरे की तरह
चीरता चला जाता है काल

धरती

बादलों के होते
चिंता नहीं है धरती को
अपनी कोख में
 हल चलने की
वृक्षों के होते
क्षरित होने

ज़र्रा-ज़र्रा
गटरों में बह जाने की
मौसमों के होते
पकने
पककर
आदमी की भूख के लिए
बीज बन जाने की
सचमुच
चिंता नहीं है धरती को
अपने सुख में
सेंध लगने की

[पाईन हिल काटेज, शिमला-171002]

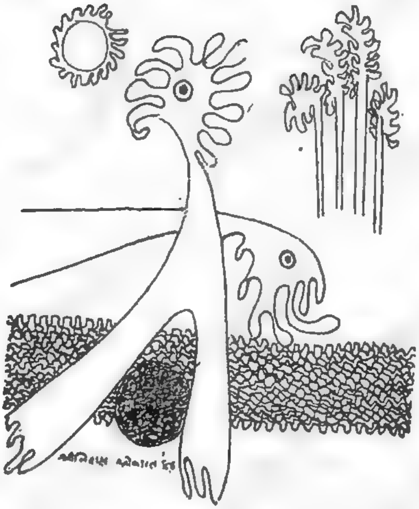

चार कविताएं

□ लाल्टू

किसी दिन तू आएगी

औरत
तू जो मेरे जन्म से
मौत तक
मुझसे जुड़ी है
तेरे कठिन कोमल हाथों में खिलता
तेरे आंसुओं को पहचानता
तेरी चाह में भटकता
तेरी मांसलता में
        खुद को छिपाता
तेरे दिए बच्चों से खेलता
तुझे रौंदता रहा हूं

तुझे तो पता है
कितना डरा हुआ हूं मैं
कितना घबराता हूं तुझसे
फिर भी
        हर शोषक की तरह
अपने शासन-तन्त्र की शक्ति से
तेरा गला दबोचता हूं मैं
जानता हूं
हर शोषित की तरह
तुझे भी पता है
कि यह सब कुछ बदलेगा

कि किसी दिन
तू बाजारों में पत्रिकाओं के
मुख पृष्ठों पर
या रसोइयों में मिट्टी के तेल की आग से
मरेगी नहीं
जानता हूं
किसी दिन
तू आएगी
मुझे मुक्ति-पथ पर ले चलने

उस दिन
हमारे मन और शरीर पर
शोषण और भूख के
कपड़े नहीं होंगे

उस दिन
हम केवल समानता पहनेंगे
और देखेंगे
हमारे चारों ओर सब कुछ
जो अब कितना गंदा लगता है
बदल गया होगा
एक पार्थिव सौन्दर्य में

सिर्फ तुम्हारे लिये

कितनी कविताएं लिखनी हैं
सिर्फ तुम्हारे लिए

इन दिनों
कितने भाई, कितनी बहनें
अकविता के अनियमों जैसे
शैतानी तूफानों के
ऐतिहासिक षड़यन्त्रों का प्रमाण बन
कभी धर्म-युद्ध
कभी जाति-युद्ध
कभी बस यूं ही

हताशा के भंवर में
खो जा रहे हैं
और अपने ही अंगों को
पिघलता महसूस कर
पीड़ा की तीव्रता में
मैं सही रास्ते ढूंढ़ता हूं

तभी बार-बार
ख्याल आता है
अभी कितनी कविताएं
केवल तुम्हारे लिए
लिखनी हैं

वैसे
जिस गहराई से
एक साथ हमने
देखा है
इस महानरक को
इसकी अंतड़ियों की सड़न को
करीब से
जिस तरह सहा है
जिस तरह
अचानक प्रेम-स्पर्श में
बंधे हाथ
उठ गए हैं
विद्रोह की चीत्कार बन
और अचानक देखा है
हमारे साथ
हर गली से
हर नाले से
आक्रोश भरे
कांपते हाथ
उठ रहे हैं
बार-बार कविता की
घोषणा हुई है

जो कविता नहीं है
आग की लपटें हैं
जिन्होंने
हमें खींच लिया है

अब हम उस रास्ते पर
आ चुके हैं
जहां जीना एक विद्रोह है
और कविताएं तुम्हारे लिए
इंतज़ार कर रही हैं
थोड़ी दूर
सड़क के उस छोर पर

इस वक्त

इस वक्त
वह अंश आकाश का
जो हल्का नीला है
उसके ऊपर काले बादल
नीचे मकान की छत
और आम के पेड़ में
पत्तों से घिरी
टुकड़ी-टुकड़ी बंटी जगहों में
एक ही हलचल है

थोड़ी देर में
बादल फैल जाएंगे
निकल कर मेरे मन से
आकाश, नीलापन, बादल
इन सबसे अलग
खड़ा होगा शून्य में
मेरा घिनौनापन
कोई आतंकवादी

शायद
जो कुछ मुझमें अच्छा है

इस बार वह
चुप न रहेगा
क्योंकि अब
देर हो चुकी है बहुत
सौगन्ध आकाश की नहीं
खून की लेकर
गरज उठेगा
अंतिम आशाओं का मसीहा

इस वक्त
सब जगह
एक ही हलचल है

एक सौ छठी बार

आज मैं एक सौ छठी बार
एक छोटा-सा
बच्चा बनूंगा
चिढ़ाऊंगा सबको
जीभ मोड़-मोड़ कर
आंखें झपक-झपक कर
और जब सब हंसते रहेंगे
धीरे-धीरे उनकी तस्वीरें
बना रख लूंगा
अपने ख़्यालों में
और रात को
जब सब सो जाएंगे
खोल लूंगा
अपने औज़ारों का बक्सा
चुन-चुन कर
उनकी तस्वीरों को
क्षत-विक्षत कर दूंगा
चीखते हुए—
क्यों चुप हो,
क्यों चुप हो ?

[416, सं० 38, चंडीगढ़]

दो कविताएं

□ आनन्द

करमू और कविता

जब तक
करमू के हाथों में
हल की मूठ है
शहर का हर चालाक आदमी
सुरक्षित है।

हर साल
ज़मीन की मटियाली सलेट पर
लिखता है करमू
रोटी का सवाल
छाती की चट्टान धीरे-धीरे
तेज़ाब में गलकर
रिसती है बूंद-बूंद
कमर धीरे-धीरे
झुक जाती है ज़मीन की ओर
भिखारी की फरियाद की तरह
किन्तु मिलता नहीं
सवाल का जवाब
खामोश पड़ी रहती है
धरती की गूंगी, बहरी सलेट
वह मार खाता है
हवा से
रोज़ पिटता है सूरज से

फिर भी
नालायक बच्चे की तरह
रोज सबसे पहले
पहुंच जाता है स्कूल

करमू जानता है
इन दिनों
धरती का पेट भरने से
नहीं भरता आदमी का पेट
कि बांझ धरती की कोख से
जन्म नहीं लेता
रोटी का फूल
वह शहर की मेज़ पर उगता है
मेज़ के पीछे बैठा
चालाक आदमी
जब चाहे मौसम को
अपने पक्ष में मोड़ लेता है
वह एक सुविधाजनक उत्तर चुनकर
बाकी सारे सवाल
तुम्हारे भूखे पेट के लिये
छोड़ देता है ।

तुम्हारी कविता के
आख़िरी शब्द को पकड़ कर
उलटा चलता हुआ
तुम तक पहुंच गया था करमू
उसका लम्बा बयान
तुम्हारी छोटी-सी 'हूंह' में
बदल गया था
करमू को इन्तजार था
मेज़ में जुम्बिश होगी
आपने
बड़ी संजीदगी से
एक गिलास पानी पिया
अब आप सावधानी से

करमू की पीठ पर
एक कविता बुनते हैं
पर सच तो यह है दोस्त
हम सब
कविता के नाम पर
एक सुविधा ही चुनते हैं।

तुमने तो कहा था

तुमने तो कहा था
कि तुम
सब कुछ समाप्त हो जाने से पहले
उतार लाओगे
सलीब पर टंगे
आदमी का चेहरा
शायद तुम जानते थे
बर्बर महल की रक्तवर्णी
ईंटों पर लिखा इतिहास
अगरु धूम से
काली हुई छतों पर
उभरती भयावह आकृतियां
तुमने देख ली थीं—
तुमने कहा था।

तुमने तो कहा था
कि तुम
इस गोल रोटी जैसे चांद को
उतार लाओगे धरती पर
और हर खाली हाथ पर
उगा दोगे चांदनी का फूल
तुमने तो कहा था
कि तुम
जलोगे हर अंधेरे के खिलाफ
मशाल की तरह
क्योंकि अंधेरा भी

हाथ डाल देता है
आदमी के गिरेबान पर
भूख की तरह
इसलिए ज़रूरी हो गया था
अंधेरे का चक्रव्यूह भेदना
तुमने तो कहा था
इस महाभारत में
अभिमन्यु की तरह बिछ जाओगे तुम।

तुमने यह तो नहीं कहा था
कि तुम
समेट कर सारे शहर के चिराग
कैद कर लोगे रोशनी
अपनी छत पर
यह तो तय नहीं था
कि तुम
व्याकरण के सारे नियम तोड़कर
कुछ सर्वनामों को
संज्ञा बनाने का हठ ठान लोगे
यह भी कहां तय था
कि तुम
इस कुरुक्षेत्र में
स्वयं बिछ जाओगे बिसात की तरह।

पता नहीं
भूल मुझसे हुई या तुमसे
मैं तो तुम्हारे जलूस के पीछे
मीलों तक भागा
दोनों हाथ हवा में उठा दिए
जब-जब तुमने समर्थन मांगा।

[रा० महाविद्यालय, ऊना, हि० प्र०]

पांच कविताएं

□ मोठेश निर्मोही

पेड़ का संगीत

पड़ रहा है फीका
सितार तुम्हारा
देने लगे हैं संगीत
चिड़ियों के उल्लास में
मेरे शहर के पेड़ !

मौन तुम्हारा

मौन तुम्हारा पिघला दूं
हिमालय की तरह
पर रीता नहीं
तभी
होता रहा आंदोलित मैं
उद्वेलित समन्दर भी

अस्तित्व : एक

जाड़े की नंगी रात
जेठ की दुपहर
अपना-अपना आलाप
अपना-अपना क़हर !

अस्तित्व : दो

उगते
और
अस्त होते सूरज की
लाचारी का साथ
अपने होने का
झूठा अहसास

ठंड

बांस खपच्चियां
छोड़
लौट गयी अपने पहाड़
कंधों पर भार ढोये
आयी थी सांझ

बाढ़

आकाश में नहीं
अब उमड़ेंगे वे
आदमी के असहाय मन की
अतल गहराइयों से
पी-पी कर दर्द
बादलों से नहीं
आंखों के बरसने से
आयेगी बाढ़ !

[उम्मेद चौक, जोधपुर-6 (राज०)]

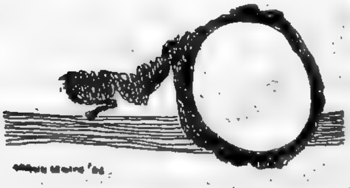

समीक्षा

विश्वनाथप्रसाद तिवारी और अमिताभ की कविताएं

☐ श्रीनिवास श्रीकान्त

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कवि आज के मनुष्य की वस्तुस्थिति का आन्तरिक व्याख्याकार है। इस संकलन की अधिकतर कविताएं इसी आन्तरिकता के ताने-बाने पर, एक विशिष्ट ऐतिहासिक और सामाजिक सन्दर्भ में समसामयिक जीवन के अमूर्त डिज़ाइन उकेरती चलती हैं। आज के जीवन का कोई भी पहलू उसकी पकड़ से छूटा नहीं है। काव्य में घटना को वृत्तान्त का रूप देकर संकलन की कुछ कविताएं बेहतरीन बन गयी हैं। ऐसी कविताओं में 'कसौटियां', 'मां', 'फैसले की रात', 'चेतावनी', 'गाय', 'हाथी', 'एक राजस्थानी मजूर' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें कवि पर्यवेक्षक न होकर एक कथा-वाचक की हैसियत से हमारे प्रस्तुत है लेकिन एक ऐसा कथावाचक जो कभी देखे, महसूस किये गये घटना-दृश्यों को अपने अन्दर की ज़मीन से अभिषेकित कर उन्हें एक खास कोण देता है।

अधिकांश कविताएं अपनी वृत्तान्तधर्मी शैली के कारण भूतकालिक कलेवर लिये हुए हैं जिनमें स्मृति एक बुनियादी तत्व बन गया है ये स्मृतियां उस समय की चिन्दियां हैं जो अभी-अभी गुजरा है अतः इन कविताओं का अतीत, सुदूर-अतीत न होकर, समसामयिक दौर का ही पूर्वांग है जिसमें हम अपने समय के आदमी की व्यंग्यात्मक स्थिति, उसके अमानवीकरण और निपट अकेलेपन को प्रतिबिम्बित देखते हैं। वह सत्ता के षड्यंत्र के सामने बिलकुल निहत्था है। निहत्था ही नहीं, उसकी अन्यायवृत्ति का शिकार भी है क्योंकि उसके लिये 'यह पूरा का पूरा आदमी, एक संक्रामक रोग' बन गया है। व्यवस्था अपनी 'आचार संहिता' और 'विशेषधिकार' के झांवों से उसको 'रगड़-रगड़ कर छोटा' बनाने में तल्लीन है।

'बेहतर दुनिया के लिये' छटपटा रहे इस सामाजिक का संसार अन्धकारमय है। सुविधा भोगियों ने उसके समूचे अस्तित्व को अकिंचन बना दिया है। 'गुलावद्वीप समूह' से लेकर 'धान रोपती स्त्री' तक उसी आदमी की आवक्षप्रतिमा इन कविताओं में बार-बार उभरती है। हर व्यवस्था आदमी को मार रही है। चाहे वह एकांगी हो अथवा बहुअंगी। एक में उसे सताया जा रहा है जबकि दूसरी में उसे शोषित होने के लिये खुला छोड़ दिया गया है। वर्तमान माहौल में कभी-कभी यह लगता है कि शासन तंत्र एक दोधारी तलवार है जिसके आघात से आम आदमी नहीं बच सकता। लेकिन ऐसी व्यवस्था को लाने के लिये कौन जिम्मेदार है? इस ओर भी कवि ने इशारा किया है :

उन्होंने जब चुनने को कहा
तो मैंने चुना 'सुविधा'
वे गद्‌गद् हुए
उन्होंने अपनी कन्या से कर दिया मेरा विवाह
और बदले में निकाल लिया मेरा कलेजा

किसी भी तन्त्र में मध्यवर्ग का आदमी उपकरण बन सकता है, विशेषकर ऐसी हालत में जब बार-बार उसका ध्यान भौतिक-सहूलतों को बरकरार रखने की ओर दिलाया जाता रहा हो। मध्यवर्ग जोकि मार्क्स के अनुसार किसी भी जन क्रांति की रीढ़ है सुविधा भोग और खुद को आफ़त में न डालने की वृत्ति के कारण अनचाही सत्ता को आदमी और उसके समाज का शिकंजा बना देता है। लेकिन कवि बात के इतने विस्तार में नहीं जाता और वस्तुत: इन कविताओं का ऐसा कोई गन्तव्य भी नहीं है फिर भी उसके ये काव्य-संदर्भ हमें इन निर्णयों पर सहज ही पहुंचा देते हैं। किसी भी कविता का मूल कार्य मनुष्य और उसके यथास्थिति परिवेश के प्रति पाठक में बोध को उजागर करना है जिसे ये कविताएं अपनी पूरी ऐतिहासिक संगति के साथ व्यक्त करती हैं।

डा० तिवारी की कविता-यात्रा में इस संकलन की कविताओं को हम 'मोड़ का आभास' कराने वाली कविताएं न कहकर उनके कवि का 'विकासशील होना' कहें तो ज्यादा उपयुक्त होगा; भले ही ये तत्व उनकी पूर्ववर्ती कविताओं में मुखर नज़र नहीं आते। हर कवि के पीछे विकास की एक लम्बी प्रक्रिया होती है जो उसे अन्तत: एक सुनिश्चित पड़ाव तक पहुंचा देती है। कविता अपने लिये निरन्तर एक उपयुक्त भूमि की खोज करती चलती है और खोज की इस प्रक्रिया में वह अपने आपको व्यक्ति, समाज, देश, दुनिया और इतिहास से अधिकाधिक बंधा हुआ पाती है। यही वजह है कि डा० तिवारी की ये किविताएं यथार्थ के व्यापक धरातल, कालिक सत्य और युग धर्म के सटीक निर्वाह के कारण और ज्यादा घनीभूत और विश्वसनीय बन सकी हैं।

कुछेक कविताओं में गृहविरह (नौस्टेल्जिया) बड़े ही सहज ढंग से उभरा है। भागते हुए समय के साथ कवि को अपना वह पुराना समय याद आता है जिसकी रफ्तार में अपने गांव-परिवार और उससे जुड़े हुए अनुभवों से वह स्वयं को कटा हुआ पाता है। 'गुल इलाइची की गन्ध'; 'साखू की कोंपलें', 'फहराते आंचल वाली साड़ी' के चिरपरिचित सन्दर्भ पाठक में एक अनिर्वचनीय टीस छोड़ जाते हैं, खासकर ऐसे पाठक में जो ग्रामीण जीवन की स्मृतियों से सम्पृक्त है। इस तरह की कविताओं में कवि ने लोक-शैली का सहारा लिया है जिसके बिना इन चित्रों को निर्मित करना सम्भव नहीं। '21' के लिये लिखी गयी चार कविताओं में सुदूर अनुभव किये गये चित्रों का सघन तारतम्य है जो भूगोल की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए मनुष्य के दुनियावी सम्बन्धों को एक व्यापक धरातल पर कायम करते हैं। ऊपर से जायजा लेने पर यह कविता वायवीय और प्रलापात्मक ही लगेगी लेकिन जो व्यक्ति ऐसे अनुभवों से एक बार भी गुज़ारा हो वह कविता की मूल भावना को सहज ही थाहने लगता है। 'कमरे के बाहर' स्थिति की संगीनता पूरी रचना को मार्मिक बना देती है।

अपनी 'निजी' कविताओं में भी कवि इर्द-गिर्द की ज्वलंत समस्याओं से अपने आपको मुक्त नहीं कर पाता। यह उसके विशुद्ध सामाजिक होने का प्रमाण है। मां को वह बड़े ही

व्यापक रूप में देखता है जिसे निरन्तर लूटा-खसोटा और अपमानित किया जा रहा है। वह मां कभी भाषा, कभी जन्मभूमि और कभी जमीन के रूप में हमारे सामने आती है। मां के माध्यम से कवि ने समाज के पतन की कहानी कही है जो 'आरा मशीन' और 'अपने बेटे के आगे' में बिगड़ते हुए पर्यावरण की ओर इंगित करती है फिर चाहे पेड़ चीड़ का काटा जा रहा हो अथवा सागोन और आम का। 'जैसे निकलता है अमोला आम की गुठली से' वैसे ही वह अपने आपको जन्मभूमि से पैदा हुआ मानता है; नदी जिसके लिये बहन है। अनेक प्रसंगों में उभरा 'मां' का आद्यबिम्ब, मिट्टी से आदमी के अलगाव को दर्शाता है।

लेकिन सभी कड़वाहटों के बावजूद वह भविष्य के प्रति आस्थावान है। उसे पूरी उम्मीद है कि समय एक-न-एक दिन अवश्य ही सीधा रुख लेगा :

तुम न चाहो तो भी। यह दुनिया बदलेगी···
नहीं दिखायी पड़ेगा वह सब कुछ
जिसे देखकर स्त्रियां सुबकने लगती हैं
और बच्चे रजाइयों में छिप जाते हैं

काव्य-भाषा प्रायः धीरे-धीरे गद्यात्मकता की ओर बढ़ रही है। सम्भवतः अपने आपको नये-नये अनुभवों से सम्पृक्त करने के लिए। अपने आपको जीवित रखने के लिए। लेकिन काव्य में बढ़ते हुए गद्याग्रह की प्रवृत्ति कविता को उसकी मूल-देह और रचाव से भी अलग कर रही है। इन कविताओं को पढ़ कर भी कुछ ऐसा ही लगा।

'घायल घोड़े नीली धूप' एक विशिष्ट मानसिकता को अभिव्यक्त करने वाली रचनाकृति है। यह मानसिकता अपने आपमें अनहोनेपन की घुटन को समेटे हुए है जहां समय की असारता और क्षणों की भंगुरता सघन होकर एक व्यापक फलक पर पूंजीभूत हुई है। सन्दर्भ चाहे इतिहास का हो अथवा इर्द-गिर्द फैली हुई प्रकृति का, हर स्थिति पर यह भाव गाढ़ा होकर इधर-उधर फैलता हुआ नज़र आता है।

शिमला और उसके वातावरण के माध्यम से कवि अमिताभ ने एक मृतप्राय सभ्यता का चित्रण किया है जो अपनी अप्रासंगिकता और विसंगति के बावजूद चुके हुए दम्भ को अब भी ढो रही है समय और वस्तुस्थिति से विरक्त। नगर अपनी-अपनी अस्मिता खो चुका है। उसका नैसर्गिक परिवेश अब कोई नया अर्थ नहीं देता। वस्तुतः कवि ने ऐसे शहर को एक मॉडल के रूप में लिया है और यह मॉडल कहीं हमारे आज के समाज की लघुता को ज़ाहिर करता है। द्रष्टा व्यक्ति की कालगत सम्वेदना जहां कोई अर्थ नहीं रखती।

'घायल घोड़े' और 'नीली धूप' अतीत की ओर खुलती हुई और वर्तमान में घुलती हुई एक फन्तासी है जो अपनी सांगरूप या अतिशयोक्ति में एकाकी मन की सभी स्मृतियों और भावों को समेटे हुए है। घाटियां, धूप, आकाश और चोटियां जिसे और 'कांक्रीट' बना देते हैं। हर चीज कोहरे में डूबी है, आदमी से आदमी के रिश्ते को प्रच्छन्न करती हुई।

कविताओं में प्रक्षेपित बिम्बमयता होने के कारण वे कभी-कभी दुरूह भी लगती हैं। लेकिन कवि द्वारा रचित स्वैर कल्पनामय संसार का विश्लेषण करने पर इन्हें और स्पष्ट किया जा सकता है। 'एक शहर की मौत' में, विशेषकर इस सिरीज़ की दो नम्बर कविता में प्रकृति और स्वैर कल्पना के सामंजस्य से शहर की छाती पर हुए आघातों को समझा जा सकता है।

अमिताभ की प्रायः हर कविता में एक शहर हमारे साथ-साथ चलता हुआ नज़र आता

है जो वर्तमान सभ्यता की मूल्यहीनता की ओर इशारा करता है। बिना चेहरे की यह सभ्यता समय और इतिहास के प्रति एक सम्वेदनशील व्यक्ति को उदासीन बना देती है जो पूरी मनुष्यता को एक व्यापक फलक पर देखना चाहता है।

कवि इतिहास के प्रति आस्थाशील है क्योंकि इतिहास में उसे आदमी और उसके रचना संसार की भव्यता के दर्शन होते हैं। वर्तमान के प्रति उसका पूरी तरह मोहभंग हो चुका है क्योंकि व्याप्त वातावरण में मनुष्य का ऐतिहासिक और गरिमामय पुनरुत्थान अब सम्भव नहीं। गत सभ्यता का जीवित प्रतीक यह नगर अब उसके लिये एक असम्भावना है :

छिन्न मस्तक देवदार/राह देते हैं तंग गलियों को
पगडंडियों में सज जाते हैं मीना बाजार
लोगों के मन की तरह बदल जाते हैं मौसम
शहर को दबोच लेता है कंकरीट का दैत्य...
एक बीभत्स रोग से/धीरे-धीरे मर जाता है शहर

जिन लोगों ने गौरांग सभ्यता के ऐसे निर्मम अवशेष को गहराई से पहचाना नहीं है वे सम्भवतः अमिताभ की कविताओं का सही आस्वादन नहीं कर सकते। इन कविताओं की भावभूमि हिन्दी की इधर की कविताओं से बिल्कुल भिन्न है जिसके लिये ऐतिहासिक प्रसंगों को जानना जरूरी होगा। कविताओं में व्यक्त सभ्यता के संकरण और उसके सांगरूपक को सही अर्थों में तभी समझा जा सकता है।

पुस्तकें :

1. **बेहतर दुनिया के; लिए** (कविता संग्रह) **विश्वनाथ प्रसाद तिवारी; प्रकाशक :** राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल्य 30 रुपये
2. **घायल घोड़े नीली धूप** (कविता संग्रह) **अमिताभ; प्रकाशक :** पराग प्रकाशन, दिल्ली-32 मूल्य : 20 रुपये

पनघट और प्रेरणा गीत

☐ फूलचंद मानव

पूजाश्री के लिए 'पनघट' मन की गतिविधियों का संगम तो है ही, कवयित्री की अनुभूतियों, पीड़ाओं, भावनाओं का प्रतीक भी है। गेय तत्त्व के द्वारा पनघट को साकार करके शब्दों का चित्रमय संसार पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है।

किसी कवि का प्रथम काव्य-संग्रह कितने ही प्रश्न-चिह्न नयी रचना के सामने खड़े कर सकता है, लेकिन 'पूजाश्री' का पनघट कवयित्री की प्रथम कृति होते हुए भी संभावना की ओर संकेत करता है। 'पनघट' के गीतों में जो आत्मबोध की अनुगूंज है उसका प्रभाव पाठक पर भी ठहरता है चूंकि यहां मुक्त भोगी जीवन की झंकार सुनाई देती है। जड़ से चेतन की ओर यह यात्रा यूं ही नहीं शुरू होती कि कवयित्री पाषाण के रू-ब-रू सार्थक अभिव्यक्ति दे रही है—'हमने अपना परिचय पाषाणों से जाना।'

प्रकृति की कविता में मूर्त-अमूर्त कितने ही उपमान पूजाश्री ने दिये हैं। आयु के आवेग के साथ पनघट की परिपक्वता कवयित्री की प्राकृत-चेतना में मुखर होती जाती है, यही इनकी प्राप्ति भी है—

सबकी छत जब अर्श है, कितने बांटे फर्श है,
आंखों का आवरण हटे, तो सबमें उत्कर्ष है।

यह पहले घर का मर्म है, वहीं सैंतालीसवां घर खुलता है कि—

शब्द नहीं केवल गूंगे का संबोधन
खड़े हुए हैं खंडहर से बस्ती में हम
पत्थर की प्रतिमा में कितना आकर्षण
जलते-बुझते रहे अगरबत्ती से हम।

जीवन की रहस्यात्मकता और दार्शनिक चेतना को जिस स्तर पर छंदों में पूजीश्री ने बांधा है, वह नयी प्रतिमा की संभावनओं को उजागर करता है।

पनघट प्रेरणा है, प्रतिक्रिया है, मंथन है, मंजिल है और आस्था एवं दर्शन की कवयित्री पूजाश्री के लिए यह एक लीला भूमि है। नयी कर्म भूमि, जहां जगत की हलचल, चंचलता, चातुरी बहुत कुछ स्वत: ही उजागर हो जाया करती है।

भाई रमानाथ अवस्थी की भूमिका और श्री गंगाशरण सिंह की पंक्तियों ने भी पनघट को 'रौनक' दी है। बहरहाल सृजन के धरातल पर पूजा श्री का यह प्रयास सराहनीय है जिसे रोचकता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

हिमाचल के युवा कवियों, गीतकारों में सी. आर. बी. ललित का नाम इस बीच उनकी रचनाओं के द्वारा उभर कर सामने आया है। उनकी कृति 'प्रेरणा गीत' कविता, गज़ल और गीतों का संकलन हैं। इसमें सामयिक, सामाजिक रचना के साथ कवि का प्रचारक पुरुष भी उभरता है। परिवार नियोजन, शहर और व्यक्ति विशेष के लिए—सलक्ष्य रचनाएं कवि की व्यक्तिगत ज़रूरत या परिस्थिति जन्य आग्रहों की आपूर्ति तो हो सकती हैं, ऐसे लेखन में सृजन का अभाव और उत्पादन का अंश सहज ही आगे आ जाता है, जिससे कृति को पुस्तकाकार प्रस्तुत करते समय जागरूक रहना ज़रूरी हो सकता है। प्रेरणा-गीत कवि सी. आर. बी. ललित की सामयिक आवश्यकताओं की प्रेरणा का प्रतीक है। जीवनी परमार की, सांझ का शिमला, सुनियोजित परिवार, बच्चे जितने होंगे कम, शहीद गान, जहां एक दौर की वे गेय कविताएं हैं जो विभिन्न अवसरों पर तैयार की गयी हैं। वहीं प्रकृति, समाज, मनुष्य, वातावरण और संस्कार संस्कृति से प्रेरित अनेक अच्छी रचनाएं भी प्रेरणा गीत में हैं।

कविकर्म समाज से जहां प्रेरित-प्रक्रिया है, वहीं समाज सुधार और नई चेतना का प्रकाश पुंज भी होता है। अपने आसपास और सामयिक संदर्भों के प्रति सजग कवि सूक्ष्म बिम्बों, प्रतीकों के माध्यम से जो कहना चाहता है, उसकी आज ज़रूरत भी है। इस तरह प्रेरणागीत आवश्यकता पूर्ति की रचनाएं भी कही जा सकती हैं।

कवि का आशावादी दृष्टिकोण प्रेरणा गीत को मुखर बना रहा है। अंधकार और अनास्था के युग में कवि गा उठा है—

क्षण भंगुर यह मानव जीवन, दीप ज्योति से जगमग कर लो।

इसी तरह ओ वासन्ती पवन, इतिहास, ओ जय माला के प्रथम सुमन जैसी पठनीय गीत रचनाएं, कवि के सृजन का परिचय भी देती हैं।

उत्पादन और सर्जन के भेद को पहचान कर सी० आर० बी० ललित 'प्रेरणा गीत' से आगे कुछ और सार्थक, गंभीर रचनाएं पहाड़ी-संस्कृति के संदर्भ में दे पाएं, यही आशा की जानी चाहिए।

पुस्तकें

1. पनघट, (गीत-कविताएं), पूजा श्री, मूल्य 30 रु०
2. प्रेरणा गीत (गीत-कविताएं), सी. आर. बी. ललित, मूल्य 40 रु०

दोनों पुस्तकों के प्रकाशक : श्री हिन्दी साहित्य संसार, नई दिल्ली।

विपाशा : के आर-पार

☐ मौलूराम ठाकुर

मानव समाज में नदियों का विशिष्ट स्थान है। समस्त संसार में जितनी महान संस्कृतियां और सभ्यताएं अस्तित्व में आई हैं, वे सभी विश्व की महान नदियों के साथ-साथ ही विकसित हुई हैं। भारतीय समाज के लिए नदियां केवल भौतिक सत्तामात्र की जलधाराएं नहीं हैं, वे हमारी देवियां हैं, हमारी माताएं हैं और पाप-नाशक हैं। अथर्ववेद में कहा गया है—

हिमवतः प्रसवन्ति सिन्धौ समह संगमः
आपाहे महानद देवी वहेन तृदद्योत

अर्थात् हिमालय से निकलने तथा सिन्धु में मिलने वाली सरिताएं हमें दिव्य औषधियां प्रदान करें।

ऐसी महान नदियों में व्यास नदी कुल्लू-मनाली के निकट रोहतांग पर्वत शिखर से निकल कर हिमाचल प्रदेश के बीच में से गुजरती हुई पंजाब और पाकिस्तान को पार करती हुई अरब सागर में गिरती है। रोहतांग एक नया नाम है। इस पर्वत-शिखर का प्राचीन नाम भृगु-तुंग है। यहीं कहीं आदि ऋषि भृगु ने अग्निदेव को साक्षात् पृथ्वी पर उतारा था और तब सृजन हुआ था ऋग्वेद की आदि-ऋचा का "ओं अग्निमीले पुरोहितम्"।

यहीं कहीं महान जल-प्लावन के बाद रुका था आदि-मानव मनु का शकट और तब उसने बसाया था अपना घर 'मन्वालय' अर्थात आज का मनाली। इसी के साथ सृष्टि की रचना हुई। भृगु तुंग के इस ओर सभ्य समाज का अन्तिम छोर था 'कुलान्त' अर्थात देव-भूमि कुल्लू और दूसरी ओर था निर्मम, निर्जीव, अन्न से रहित, निर्वसन, मानव-विहीन 'गरजा खडोलिंग' यानी डाकनियों का देश जिसे हम आज लाहुल कहते हैं। तब देवताओं को चिन्ता हुई कि भृगुतुंग की दूसरी ओर गरजा खडोलिंग में भी मानव समाज बसा लेना चाहिए। परन्तु इस प्रयत्न में जो भी उस क्षेत्र में पहुंचता डाकनियां, भूत, प्रेत, दानव और पिशाच उसे हड़प कर जाते। तब लाहुल के वर्तमान प्रमुख देवता घेपङ ने अगस्त्य ऋषि का काम किया। उसने मुंह में अन्न के दाने डाले और ग्युंगडुल और तांगजर आदि देवताओं को साथ लेकर लाहुल में प्रवेश किया। जब डाकनियों, भूत-प्रेतों ने रोका तो वह नंगा हो गया कि मेरे पास तो कुछ भी नहीं है और इस तरह लाहुल में अन्न पहुंचा और मानव भी।

इस तरह गरजा खडोलिंग में मानव समाज विकसित हुआ। परन्तु उन्हें मालूम नहीं था कि पर्वत की दूसरी ओर भी कोई दूसरा मानव-समाज है। तभी पक्षियों का एक जोड़ा उस

ओर जा पहुंचा और उसने सूचना दी कि भृगुतुंग की दूसरी ओर भी बहुत बड़ा समाज है। तब लोगों ने शिव की आराधना की और जब प्रसन्न होकर शिव ने दर्शन दिए तो लोगों के मार्ग के लिए अनुरोध पर शिव ने स्वयं अपने त्रिशूल से भृगुतुंग को एक स्थान से तोड़ा और कटी हुई चट्टानों को दोनों तरफ ऊपर फैंक दिया। इस तरह भृगुतुंग पर मार्ग बना और दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे शिखर खड़े हुए। परन्तु शिव ने आदेश दिए कि केवल उसके बताए मार्ग से ही मध्याह्न से पहले इस शिखर को पार किया जाए। अन्यथा यदि उनकी संध्या में विघ्न डाला गया तो हानि भी उठानी पड़ सकती है।

मानव बड़ा हठ-धर्मी, बड़ा कृतघ्न, बड़ा अभिमानी और बड़ा निष्ठुर है। शीघ्र ही शिव के मार्गदर्शन और आदेशों को भूल गया उनका उल्लंघन करने लगा। शिव प्रसन्न हुआ तो आशुतोष, क्रुद्ध हुए तो रुद्र। जब उन्होंने देखा कि उनके आदेशों का पालन नहीं हो रहा है तो शिव ने आंधी का रूप धारण करके सहस्रों को मौत के घाट उतारा। भृगुतुंग तभी 'रोहतांग' कहलाया जो तिब्बती भाषा का शब्द है यानी 'मौत का घर' या 'शवस्थान'।

इसी रोहतांग शिखर पर, लाहुल को जाते हुए मार्ग (अब सड़क) की बायीं ओर थोड़ी दूरी पर एक बड़ी चट्टान के नीचे से व्यास नदी निकलती है। इस जल-स्रोत को 'व्यास-ऋखी' कहते हैं। यहीं पर महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास ने तप किया था। इस स्रोत के ठीक सामने मार्ग की दूसरी ओर परन्तु इससे काफी दूर, एक दूसरा जलाशय है जिसे व्यास-कुण्ड कहते हैं। यह पर्वतारोहण संस्थान मनाली के सुप्रसिद्ध स्कीइंग स्थान सोलंग नाला के शिखर पर है। दोनों स्रोतों के पानी कोठी गांव के निकट आकर मिलते हैं और एक बड़ी नदी का रूप धारण करते हैं। व्यास-कुण्ड की ऊँचाई लगभग पन्द्रह हजार फुट है परन्तु रोहतांग मार्ग-शिखर समुद्र तल से 13,400 फुट की ऊंचाई पर है। मूरक्राफ्ट पहला विदेशी यात्री था जिसने अपने साथी ट्रैबक के साथ 17 अगस्त 1820 को यह शिखर पार किया था। अपनी पुस्तक ट्रैवलज़ के पृष्ठ 114 पर मूरक्राफ्ट लिखता है, "व्यास के स्रोत पर एक यूरोपियन की प्रथम यात्रा की स्मृति में हमारे लोगों ने यहां पत्थरों का एक चबूतरा खड़ा किया।" उस समय यहां एक छोटा सा नाम-मात्र का मन्दिर था जिसमें लगभग डेढ़ फुट ऊंची व्यास ऋषि की पत्थर की मूर्ति रखी हुई थी। इस पर आते-जाते लोग फूल चढ़ाया करते थे। अब भाषा एवं संस्कृति विभाग के माध्यम से हिमाचल प्रदेश सरकार यहां एक अच्छे मन्दिर की स्थापना कर रही है। तब मूरक्राफट ने इस शिखर को 'रिटंका-पास' लिखा है। इसके दस वर्ष बाद डॉ० जे० जी० गेरार्ड दूसरे विदेशी यात्री थे जिसने इसका ठीक रोहतांग नाम लिखा है और इसकी ऊंचाई 13,000 फुट आंकी है। जो इसकी वास्तविक ऊंचाई से 400 फुट कम है। पुनः सोलह वर्ष बाद एलग्जेण्डर कुनिंघम ने 23 अगस्त, 1846 के दिन इस पास को पार किया था। महाराजा कश्मीर के साथ अंग्रेज के सम्बन्ध खराब हो जाने के कारण कुनिंघम को चुमुरेरी झील, लद्दाख तक दूसरा व्यापारी-मार्ग ढूंढ़ने का काम सौंपा गया था।

व्यास नदी के स्रोत व्यास-ऋखी और रोहतांग शिखर से कुछ नीचे 'मढ़ी' स्थान है। आदि काल से लेकर यहां की कुछ समतल जगह विश्राम-स्थल का काम देती रही है। लाहुल से आते हुए जोत पर आराम करना खतरे से खाली नहीं था, क्योंकि शिखर पर तेज़ आंधी यात्रियों को बहा कर दोनों ओर दूर-दूर फैंक देती थी। तब लोग इस भयानक शिखर को पार करके यहीं मढ़ी में आकर सांस लेते थे। इस ओर से चढ़ाई चढ़ते हुए बीच रास्ते में होने के कारण भी यह

आराम करने के लिए उचित स्थान रहा है। सिख सेना के सरदार लेहणा सिंह मजीठिया ने 1839 में यहां एक छोटा-सा मंदिर बनाया था। वैसे आदिकाल से लेकर कोई-न-कोई धमार्थ में यहां छोटा-बड़ा मंदिर बनाता रहा है जो दो-चार वर्ष के बाद भारी बर्फ के कारण टूट जाया करता था। परन्तु अब यहां कुछ दुकानें और ढाबे बन चुके हैं, जहां गर्मियों में यात्रियों को सामान चाय-पानी और खाने-पीने की सुविधा प्राप्त है। छोटे मन्दिरों की ऐसी अस्थायी स्थापना के कारण ही इस स्थान को 'मढ़ी' कहा जाता है।

व्यास अभी छोटे से नाले के रूप में ही बहती है, और पुराने समय में स्रोत से सबसे पहला महत्वपूर्ण स्थान 'राहला' रहा है। यह रोहतांग पर्वत की चढ़ाई पर नदी के किनारे स्थित है। पुराने समय में रोहतांग पार करने से पहले लोग कुल्लू, मनाली और मैदानों से आकर रात को यहीं ठहरते थे और सुबह सवेरे ही ताज़ा दम के साथ लोग चढ़ाई की यात्रा आरम्भ करते थे और दोपहर से पहले जोत पार करते थे। पर्वत-शिखरों को स्थानीय भाषा में जोत कहते हैं। राहला में बड़ी-बड़ी चट्टानों के नीचे की गुफाओं में बने मकान रात को बड़ी स्निग्धता और शान्ति प्रदान करते थे। अब मोटर की सड़क यहां से दूसरी ओर गुज़रने के कारण 'राहला' सुनसान पड़ गया है। साधु-सन्तों, धर्मानुयायियों, तीर्थयात्रियों के 'राह'(मार्ग)का 'ला'(स्थान) अब राहला नहीं रहा है।

परन्तु राहला से कुछ नीचे और मनाली से बारह किलोमीटर दूर कोठी गांव आज भी अपनी पुरानी समृद्धि को संजोए हुए है। यहां एक ऊंचे स्थान पर लोक निर्माण विभाग का विश्राम गृह है जहां से आसपास का नजारा दिल को शान्ति प्रदान करता है। व्यास ऋखी के उच्च शिखर स्रोत से पहाड़ की सीधी चढ़ाई से गिरता व्यास नदी का पानी छोटे-बड़े जल प्रपात बनाता हुआ निकट से गुज़रता, मनोरम दृश्य बनाता है। कोठी से लेकर पलचान तक व्यास नदी अत्यन्त गहरी गली में से गुज़रती है। ऊपर से दोनों छोर पत्थर फेंकने की दूरी से भी निकट हैं, नीचे सीधी गहरी घाटी है। कोठी के निकट ऐसी गहरी गली पर बना पुल अद्भुत दृश्य प्रस्तुत करता है।

पास ही नदी की दूसरी ओर सोलंग घाटी का दृश्य देखते बनता है। पुराने समय में यह भयानक हिमस्खलनों के विध्वंसकारी कामों के लिए जाना जाता था। परन्तु अब इसे नयी ख्याति प्राप्त हुई है। यहां पर्वतारोहण संस्थान मनाली के अन्तर्गत विश्व प्रसिद्ध स्कीइंग स्थान है जहां हर वर्ष अनेक साहसी नौजवान विशेष खेलों में भाग लेते हैं। संस्थान ने यहां एक होस्टल भी स्थापित किया है। यहीं से व्यास-ऋखी और व्यास-कुण्ड दोनों स्रोतों का पानी इकट्ठा होकर बड़ी नदी का रूप धारण करता है।

कुछ ही दूरी नीचे व्यास नदी के किनारे प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का प्रसिद्ध गांव गोशाल स्थित है। यहां अब भी सैंकड़ों-हज़ारों वर्षों पुरानी वह भांदल (बहुत बड़ा घड़ा) लोऊंद वंश के पास विद्यमान है जिससे वासुकि नाग के अठारह पुत्र बाहर निकले थे और सारे कुल्लू में फैल गए थे। कहते हैं कि जन्मेजय द्वारा महान सर्प-यज्ञ करने पर जब सभी नाग और सर्प नष्ट हो गए तो अकेला वासुकि नाग बच कर भटकता हुआ कुल्लू में इसी स्थान पर पहुंचा था। यहीं उसका एक स्थानीय युवती से विवाह हुआ। इस विवाह से उनके अठारह पुत्र हुए। अठारह नाग पुत्रों का युवती एक बड़े घड़े 'भादल' में पालन-पोषण करती थी। दूध देने से पूर्व उनकी धूप-दीप से पूजा करती थी। एक दिन युवती की अनुपस्थिति में उसकी मां—नाग-बच्चों की

नानी, उन्हें उसकी तरह ही धूप-दीप लेकर गई तो मांदल का ढक्कन खोलते ही ज्योंही नाग बच्चे दूध के लिए मुंह खोले ऊपर उठे कि बुढ़िया घबरा गई। जलता धूप-दीप घड़े में गिरा। बच्चों में खलबली मच गई और इस हड़बड़ाहट में नाग-बच्चों का जिधर सिर समाया घड़ा तोड़कर बाहर निकले और उड़कर कुल्लू भर के अनेक स्थानों पर देवता रूप में प्रादुर्भूत हुए और इस तरह कुल्लू में 'अठारह नाग अठारह नारायण' देवता की प्रथा पड़ी। इनमें शिरढ़ गांव का काली नाग (जो जलकर काला हो गया था), बटाहर का पिऊंली (पीला) नाग, हलाण गांव का धूमल नाग (जिसका भांदल की आग के धुएं से शरीर झुलस गया था), भूंगा का चमाहूं नाग (चार मुखों वाला नाग) और गोशाल का काणा नाग प्रसिद्ध हैं। आग से नेत्र जल जाने के कारण काणा नाग गोशाल में ही रहा। गोशाल पहुंचने तक यद्यपि व्यास आस-पास के नालों का पानी समेटती हुई काफी बड़ा रूप धारण करती है, परन्तु अपने स्वभाव में अब यह कुछ शान्त हो जाती है। अब तक वह व्यास-ऋखी और व्यास-कुण्ड से घने जंगलों से गुजरती हुई ऊंचे-ऊंचे जल-प्रपात बनाती है, चट्टानों से टकराती सीधे नीचे गिरती जाती थी। अब उसके दोनों किनारों पर हरे-भरे लहलहाते खेत अलग ही मनोरम दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

आदिकाल में जब वेदों की रचना भी नहीं हुई थी इस नदी का नाम व्यास नहीं था। तब यह अर्जीकी नाम से प्रसिद्ध थी। सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद स्वयं इसका प्रमाण है। ऋग्वेद की ऋचा 10.65.5 में लिखा है—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णया।
असिक्न्या मरुदधे वितस्तयार्जीकीय श्रृणुह्या सुषोमया ।।

(अरि, गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि (सुतलज), परुष्णि (रावी), असिक्नी (चिनाव), वितस्ता (झेलम), अर्जिकी (व्यास) और सुषोमा हमारी प्रार्थना स्वीकार करो, हमारी प्रार्थना सुनो।) जिस भू-खंड से अर्जीकी नदी बहती थी उसे आर्जीकी कहा गया है। आज भी व्यास के ऊपरी भाग को ऊझी कहते हैं—कुल्लू के मुख्य तीन खंड हैं; व्यास की सहायक नदी पार्वती के क्षेत्र को रूपी, सरवरी सहायक नदी के क्षेत्र को लग तथा व्यास के मूल क्षेत्र रायसन से रोहतांग तक के क्षेत्र को 'ऊझी' कहते हैं। हो सकता है ऊझी शब्द संस्कृत शब्द 'आर्जीक' का तद्भव रूप हो।

व्यास नदी का आर्जीकी नाम महाभारत युग तक चलता रहा है। तब एक घटना के अनुसार इसका नाम तुरन्त बदल गया। महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र के बीच की शत्रुता को हिन्दु संस्कृति और साहित्य के सभी लोग भली प्रकार जानते हैं। कहते हैं कि एक बार जब विश्वामित्र ने महर्षि वशिष्ठ के सौ पुत्रों को मार डाला तो वशिष्ठ हताश हो गए और इतने मायूस हो गए कि उन्होंने आत्महत्या करने के उद्देश्य से अपने हाथ-पांव रस्सी से बांध दिए और अर्जीकी नदी में छलांग लगा दी। परन्तु पवित्र नदी ने उनके रस्सी के बंधन तोड़ दिए और उन्हें कुछ ही दूर नदी से बाहर निकाल दिया। यह स्थान मनाली से कुछ ही दूर नदी के किनारे स्थित, वशिष्ठ गांव है, जहां वसिष्ठ ऋषि का मन्दिर है और साथ ही गर्म पानी का चश्मा है जो नदी ने वसिष्ठ ऋषि के साथ तेज धार के रूप में बाहर निकाल दिया था। तब से आज तक गर्म पानी का यह तालाब यात्रियों और पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना रहा है और अब तो यहां टर्किश बाथ का निर्माण किया गया है। इस घटना के अनुसार क्योंकि नदी ने ऋषि वशिष्ठ के पाशों अर्थात् बन्धनों को तोड़ा था इसलिए इसे विपाशा का नाम प्रसिद्ध हुआ।

यह नाम महाभारत काल तक चलता आया। महाभारत के कर्ण पर्व में लिखा है—

शतद्रुच विपाशाच तृतीयैरावती तथा।
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा वहंगिरी ॥

बाद में मुनि वेद व्यास की तपस्या के फलस्वरूप विपाशा व्यासा में बदल गई।

व्यास नदी क्षेत्र के विख्यात स्थानों में मनाली का नाम आज विश्व भर में प्रसिद्ध है। परन्तु वर्तमान मनाली शहर न मूल मनाली है और न ही बहुत पुराना है। आदि प्रजापति और मनुस्मृति के कर्ता मनु महर्षि का आलय अर्थात् मन्वालय या मनाली तो यहां से लगभग चार किलोमीटर दूर उत्तर-पश्चिम की ओर मनालसु खड़ पार बहुत बड़ा गांव है। पत्थर के बने पुराने मकान और स्थान-स्थान पर छोटे दुर्गों के खंडहर और मंदिर इसके प्राचीन अस्तित्व के बारे में कोई संदेह नहीं छोड़ते। मनालसु खड और व्यास के संगम पर स्थित मनाली का वर्तमान शहर हाल ही का बसाया हुआ है। पहले यह जगह 'दाणा-आगे' के नाम से प्रसिद्ध थी। यहां वास्तव में पहले एक-आध दुकानें या गोदाम होते थे जहां से लाहुल की ओर जोत रोहतांग और स्पिति की ओर जोत हामटा पार करने के लिए घोड़े-खच्चरों को दाना और चारा मिलता था। मूरक्राफ्ट ने 1850 और एलग्जेंडर कुनिंघम ने सन 1846 में, केवल मनाली गांव का अपने यात्रा-संस्मरणों में उल्लेख किया है। वर्तमान मनाली शहर की स्थापना 1875 के बाद हुई है जब सबसे पहले कैप्टन बेनन ने यहां आकर रहना शुरू किया था।

मनाली से कुछ ही दूरी पर देवदार वृक्षों के बीच इतिहास, पुरातत्व और शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हिडिम्बा देवी का चार मंजिला पैगोडा शैली का मंदिर है। महाभारत के एक सन्दर्भ के अनुसार हिडिम्बा पांडवों के भाई भीम की पत्नी थी और उसके गर्भ से घटोत्कच्छ पैदा हुआ था जिस पर कर्ण को वह अचूक बाण चलाना पड़ा था जो उसने अर्जुन के लिए सुरक्षित रखा था। तभी अर्जुन सुरक्षित रहा और महाभारत युद्ध में पांडवों की विजय हुई। एक शिलालेख के अनुसार वर्तमान मंदिर 1553 ई० में राजा बहादुर सिंह ने बनाया है।

तोश और देवदार के घने पेड़ों के बीच व्यास दक्षिण की ओर आगे बढ़ती है। अब तक इसके साथ दोनों ओर से छोटे-बड़े इतने नदी-नाले मिलते हैं कि इसे पैदल पार करना सम्भव नहीं है। मनाली से छ: किलोमीटर नीचे व्यास के बायें किनारे पर इस क्षेत्र का अत्यन्त प्रसिद्ध गांव जगत-सुख है। गौरी शंकर, संध्यादेवी और अन्य छोटे मंदिर यहां के मुख्य आकर्षण हैं। इसका प्राचीन नाम 'नास्त' था और इसी नाम पर यह लगभग बारह पीढ़ियों तक राजधानी रहा है। ऐतिहासिक अभिलेखों के अनुसार कुल्लू रियासत के संस्थापक विहंग मणिपाल के उत्तराधिकारियों ने स्पिति के ठाकुरों को इस क्षेत्र से निकाल कर इसे स्वतंत्र किया। बाद में विशुद्ध पाल नामक राजा ने नग्गर पर अधिकार जमा कर राजधानी नास्त से नग्गर बदल दी।

व्यास के बायें किनारे पर ही मनाली और जगतसुख के बीच अलेऊ नाम का ऐतिहासिक गांव है। इतिहासकार इसका सम्बन्ध मनु की पुत्री इला से जोड़ते हैं। जो बुध की पत्नी थी। मनु की मनाली और इला के अलेऊ से सम्बन्ध जुड़ता है। यहां सृष्टि नारायण का प्रसिद्ध मंदिर है। यहीं मनाली के प्रसिद्ध राजा झीणा राणा के मुछियाणी साईस का नुवाणी परिवार अब भी रहता है। मुछिया राणा का सुख-दुख का साथी था, परन्तु उसकी लम्बी-लम्बी मूछों के कारण राजा रुष्ठ हो गया। कुल्लू के राजा सिद्ध सिंह ने इसका लाभ उठाया और मुछियाणी को अलेऊ का गांव रिश्वत में देने का लालच देकर झीना राणा को उसके हाथों मरवा दिया था।

जगतसुख से बारह किलोमीटर नीचे व्यास के बायें किनारे पर एक और प्रसिद्ध गांव नग्गर है। यह विशुद्ध पाल से लेकर सन 1660 के आस-पास राजा जगतसिंह के समय तक लगभग चौदह सौ (1400) वर्ष तक राजधानी रहा। यहां पर देवी त्रिपुड़ा सुन्दरी, देवी भोटंती लक्ष्मी नारायण और शिव मंदिर बहुत प्रसिद्ध हैं। नग्गर का राजमहल या किला तथा निकोलस रोरिक की कला वीथी नगर के विशेष आकर्षण हैं। स्वतंत्रता से पहले कुछ वर्षों पूर्व तक नगर कैसल सब डिविजनल आफिसर का कार्यालय रहा है। 1846 में 'मेजर हे' यहां के सबसे पहले एसिस्टेंट कमिश्नर थे। यहां प्रति वर्ष पोष महीने में गनेड का मेला लगता है, जिसका अश्लील प्रदर्शन सुर-असुरों के युद्ध का अवशेष प्रतीत होता है।

मनाली से नग्गर तथा दूसरी ओर कटराईं के आस-पास का क्षेत्र व्यास की उपत्यका का सबसे सुन्दर स्थल माना जाता है। नदी के किनारे देवदार, तोश, रई, कायल के सदाबहार वृक्ष वर्ष भर हरियाली प्रदान करते हैं। भले ही अब जन संख्या के बढ़ जाने के कारण पशु-पक्षी आबादी से दूर पर्वतों के शिखरों पर चले गए हैं, परन्तु कुछ ही वर्षों पूर्व तक जंगली पशुओं के हलके-थिरकते कदम और मुनाल, जीजूराणा जैसे आकर्षक सुनहरी पक्षियों के झुंड मानव हृदय को अकस्मात मोह लेते थे। आज भी रंग-बिरंगी छोटी-छोटी चिड़ियों की टिहुक अनायास मन को मोह लेती है। ऊपर सीढ़ी-नुमा लहलहाते खेत और फिर देवदार आदि के घने जंगल रहस्यमय शान्ति प्रदान करते हैं। वस्तुतः यहां प्रकृति अनेक रंग, रूप और स्वरों में मुखरित होती हैं। यहां के झरझराते झरने, सरसराते सरोवर, कल-कल करते नदी-नाले, गहरी घाटियां, घने जंगल, भीमकाय हिमनद, अनुपम सौन्दर्य और छटा प्रदान करते हैं।

नदी मछलियों का घर है। अतः कहा जा सकता है कि कोई भी नदी इसका अपवाद नहीं है। परन्तु इस क्षेत्र में भी व्यास विशिष्टता लिए हुए है। बहुत कम ऐसी नदियां हैं जहां ट्रोट मछलियां पनपती हों। संसार की ऐसी दुर्लभ नदियों में व्यास एक है। 1907 और 1914 के बीच उस समय के एसिस्टेंट कमिश्नर होवल ने व्यास में पहली बार ट्रोट मछली का प्रजनन आरम्भ किया था और आज व्यास नदी ट्रोट मछली के लिए विश्व प्रसिद्ध है। इन मछलियों का एक प्रजनन केन्द्र कटराईं के निकट पतली कुह्‌ल में है। जहां एक ओर यह क्षेत्र प्राकृतिक सुन्दरता के लिए विश्व-प्रसिद्ध है, वहां मानव ने भी इसे और अधिक सुन्दर बनाने में कमी नहीं छोड़ी है। सारा क्षेत्र सेब नाशपाती, खुरमानी, जापानी फल, चेरी और पलम आदि फलों के बागीचों से शोभायमान है। फल-फूलों के लिए यह क्षेत्र आदि काल से प्रकृति का विशिष्ट स्थल रहा है। व्यास नदी के दोनों ओर बसा कुल्लू वादी का क्षेत्र हिमालय का सुन्दरतम नदी-घाटी क्षेत्र है।

व्यास की प्रमुख सहायक नदियों में सरवरी 15,100 फुट ऊंची सरी पर्वत-शृंखला के सरोवर से निकलती है और पच्चास किलोमीटर दक्षिण-पूर्व की ओर चलती हुई कुल्लू शहर के निकट व्यास से मिलती है। इस प्रकार व्यास और सरवरी नदी के संगम पर बसा कुल्लू सारी वादी के केन्द्र में स्थित बड़ा शहर है और जिला का मुख्यालय है। कुल्लू-मंडी मोटर सड़क बनने से पूर्व 1926 तक सरवरी नदी के साथ-साथ भबु (Bhabu) जोत से होता हुआ जोगिन्दर नगर तक का मार्ग कई वर्षों तक कुल्लू के लिए सुप्रसिद्ध रास्ता रहा है। कुल्लू का पुराना नाम सुलतानपुर था जिसे लग (LAG) क्षेत्र के राजा सुलतान चंद ने बसाया था। बाद में जगतसिंह राजा ने इसे 1637-1672 के बीच जोग चन्द से जीत कर अपनी राजधानी बनाया था।

अब सुलतानपुर कुल्लू का एक बाज़ार है। इसका दूसरा बाजार आखाड़ा पुराने समय में राजा द्वारा बाहर से लाकर बसाये बैरागियों का कसरत का स्थान था। कुल्लू का ढालपुर का मैदान दशहरा मेला के लिए प्रसिद्ध है जिसे अब अक्तूबर के महीने में विजय दशमी के दिन से सप्ताह भर अन्तर्राष्ट्रीय लोक-नृत्य समारोह के रूप में मनाया जाता है। किसी समय इस अवसर पर कुल्लू भर के 365 देवता यहां पधारते थे। यद्यपि अब इतने देवता दशहरा पर कुल्लू नहीं आते फिर भी देवताओं के भारी समागम का आनन्द लेने के लिए दशहरा अब भी प्रमुख अवसर प्रदान करता है।

हवाई अड्डा भौंतर के निकट जिया के स्थान पर प्रमुख सहायक नदी पार्वती व्यास से मिलती है। आगे पार्वती के किनारे पर मणिकरण के उबलते पानी का तीर्थ स्थान आदि काल से लेकर यात्रियों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। यात्री पार्वती के ठंडे पानी के साथ गर्म पानी मिलाकर बनाए कुंडों अर्थात् छोटे तालाबों में स्नान का आनन्द लेते हैं, श्री रामचन्द्र के मंदिर में श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं और गर्म उबलते पानी में चावल, दाल और सिड्डू आदि बनाकर प्रकृति का आनन्द उठाते हैं। साहसी लोग कुछ आगे निकल कर पार्वती के किनारे खीरगंगा के दूसरे तीर्थ स्थान की यात्रा कर आते हैं। यहां का पानी न केवल दूध की तरह सफेद है, अपितु उसमें पकाए चावल खीर का सा स्वाद प्रदान करते हैं।

पार्वती और व्यास के संगम जिया से सीधी चढ़ाई पर लगभग 8000 फुट की ऊंचाई पर स्थित बिजली महादेव का मंदिर अपनी काष्ठकला के लिए अद्वितीय है। मंदिर के साथ साठ फुट ऊंची ध्वजा अर्थात देवदार वृक्ष का स्तम्भ दूर से ही दिखाई देता है। यहां समय-समय पर मंदिर के ऊपर आकाश से बिजली गिरती है। महादेव की पत्थर की पिण्डी चूर-चूर हो जाती है। तब पुजारी टूटे हुए टुकड़ों को मक्खन के साथ इकट्ठा करके रख देता है और पिण्डी पुनः अपने रूप में स्थापित हो जाती है। अनुश्रुति है कि जो व्यास और पार्वती के संगम का पानी कुछ दिनों तक लगातार बिजली महादेव के मंदिर में चढ़ा देता है तो उसके मन की इच्छा पूरी हो जाती है। यह केवल विश्वास नहीं है, बल्कि राजा सिद्धपाल ने 1500 ईसवी के लगभग सचमुच संगम का पानी सप्ताह भर बिजली महादेव के मंदिर में चढ़ाकर अपनी खोई हुई सत्ता पुनः प्राप्त कर ली थी।

व्यास नदी औट के निकट लारजी के स्थान पर सैंज और तीर्थन सहायक नदियों का पानी लेकर कुल्लू जिला को छोड़कर मण्डी जिला में प्रवेश करती है औट से लेकर मण्डी तक व्यास नदी की ओर दोनों ऊंचे-ऊंचे पर्वत शिखर हैं। इन सीधी पहाड़ी चट्टानों पर कोई बड़ी आबादी नहीं है। स्थान-स्थान पर छोटे नाले ऊंचे प्रपात बनाते हुए व्यास से मिलते हैं। इन नालों में उहल नदी सबसे बड़ी है। नदी का प्रमुख भाग जोगिन्दर नगर में बिजली पैदा करता है, परन्तु शेष पानी अब भी मण्डी से कुछ पीछे व्यास से मिलता है। आगे चलकर व्यास नदी सुजानपुर टिहरा और नदौन जैसे ऐतिहासिक शहरों से गुजरती हुई पंजाब में फीरोजपुर के निकट हरि-का-पतन में सतलुज से मिलती है।

वास्तव में व्यास नदी जहां प्राकृतिक सौन्दर्य और हरी-भरी वादी के लिए प्रसिद्ध है, वहां इसका इतिहास अनुश्रुतियों से भरपूर है। बारह महीने बर्फ से ढकी पर्वत की ऊंची चोटियां इसे वर्ष भर पानी से भरपूर रखती है। इसकी दोनों ओर की सहायक नदियों के किनारे पर धान मक्की, जौ, गेहूं, काठू, सरयारा, चीनी, कंगामी, कोदा, भरोसा, धांगड़ी, बाथु, टाक अनेक

प्रकार के अन्न से भरे लहलहाते खेत और फलों के उद्यान आदि काण से यहां के लोगों को खुश हाल बनाते रहे हैं। पुराने समय से लेकर इसके शांत क्षेत्र में जो भी आए यहीं के होकर रह गए आदि ऋषि, मुनि, वशिष्ठ विश्वामित्र, भृगु, जमदग्नि, भारद्वाज, वामदेव, कपिल, गौतम, शृंगी व्यास, पराशर, नारद, कण्व, भगवान परशुराम आदि विभिन्न समय में यहां पधारे और यहां आकर घोर तपस्या थी। आज भी इनके मंदिर और देवस्थल व्यास की घाटी में स्थित हैं। देश विदेश के अनेक लोग यात्री बनकर यहां आए और यहीं आबाद हो गए। मैदानों से लोग व्यापार करने के बहाने से आए और यहीं बस गए। अनेक सरकारी अधिकारी कर्मचारी नौकरी करने यहां आए और यहीं के हो गए। इस देवभूमि में आखिर कुछ तो है जो हर एक का दिल मोह लेता है और उसे यहां के वातावरण में बांधता है।

हां, इसके इतिहास में एक समय ऐसा भी आया जब लोग व्यंग्य में व्यास को बे-आस कहने लगे क्योंकि अंग्रेजों के समय में इस नदी से कोई बड़ी नहर नहीं निकली थी। परन्तु आज इसने इस व्यंग्य को भी निरर्थक सिद्ध कर दिया है। आज मण्डी-मनाली सड़क पर मण्डी से लगभग पच्चीस किलोमीटर कुल्लू की ओर पण्डोह के स्थान पर व्यास नदी पर एक बांध बनाया गया है। व्यास का पानी तेरह किलोमीटर लम्बी सुरंग से पहाड़ों के बीच से गुजरता हुआ सुन्दर नगर के निकट निकलता है फिर बारह किलोमीटर नहर में से बहता है और फिर पुनः तेरह किलोमीटर की सुरंग से होता हुआ डेहर के निकट सलापड़ में सतलुज से मिलकर भाखड़ा बांध और नंगल से निकाली उस नहर को पानी प्रदान करता है जो पंजाब, हरियाणा और राजस्थान की लाखों एकड़ जमीन को सरसब्ज बनाती है। यही नहीं इसका पानी बड़े-बड़े शहरों में बड़े-बड़े कारखाने संचालित कर रहा है। इसी से सैकड़ों किलोवाट बिजली तैयार हो रही है। पंडोह से बचे और मार्ग के नदी नालों से एकत्र व्यास के पानी को एक बार फिर तलवाड़ा के स्थान पर बांधा गया है। यह पानी भी राजस्थान की प्यास और उत्तर भारत की बिजली की कमी को दूर कर रहा है। अनुश्रुति है कि पन्डोह क्षेत्र पांडवों ने अपने अज्ञात-वास में बसाया था। आज व्यास ने उसे नया रूप दिया है। तलवाड़ा की कई किलोमीटर विशाल झील और बिलासपुर का गोविंद सागर व्यास नदी की प्रमुख देन है। इस तरह व्यास नदी ने आज वह चमत्कार कर दिखाया है कि वह बे-आस न रहकर लाखों लोगों के लिए आशा की किरण बन गई है। सचाई तो यह है कि वशिष्ठ मुनि की विपाशा आज स्वयं नए बांधों में बंधकर देश के लोगों को भूख, प्यास, से मुक्त कर रही है।

[सहजराम निवास, शिमला-171002)

अनुशासन के आयाम

☐ हरिश्चन्द्र राय

धूप भरी अक्तूबर की एक सुबह, शिमला के कैथू क्षेत्र की एक कोठी में नौ बच्चे कलाभ्यास में रत और उसी कलाकक्ष के एक कोने में उनके कलागुरु अपने इष्टदेव के सम्मुख ध्यान जप में निमग्न। साथ के कमरों में घर-गृहस्थी। कलाकक्ष में देवी सरस्वती की साढ़े चार फुट ऊंची श्वेत प्रतिमा और चित्रों, मूर्तियों, कलावस्तुओं और कालीनों की सुरुचिपूर्ण सज्जा। कुछ थोड़े समय बाद आचमन, प्रणाम, धूप-दीप, आरती, अर्घ्य आदि से निवृत्त हो वह उन नन्हें-मुन्ने शिष्यों की ओर निहारते—"अरे यह क्या, सब इकट्ठा ही बनाने लग गए।" उनमें से निशि नाम की एक बड़ी लड़की विनम्र चेष्टा से उत्तर में कहती है, "नहीं गुरुजी, इनको बनाना आ नहीं रहा था इस कारण मैं इन्हें बतला रही थी।" जैसे इतने मात्र से सन्तुष्ट न हुए हों कलाकक्ष के द्वार पर एक दृष्टि डाल कर फिर बोले, "यह जूते किसने टेढ़े-मेढ़े रखे हैं? चलो लाइन में रख कर इन्हें ठीक करके।"···कला और अनुशासन—सनत कुमार चटर्जी की शिल्प-साधना में ये दोनों अभिन्न हैं और इसी की प्रेरणा वे अपने शिष्यों को दे रहे हैं। निशि थायरायड की अक्रियाशीलता के कारण जीवन को भार के रूप में ढो रही थी। परन्तु कला-साधना ने उसे एक नया जीवन दे दिया है यहां तक कि वह अपना जीवनयापन कला के द्वारा ही कर लेती है।

लखनऊ के एक मध्यवर्गीय बंगाली परिवार में 1935 में जन्मे सनत कुमार को शिल्प और कला का शौक 5-6 वर्ष की आयु में ही लग गया था। इलाहाबाद के एलेनगंज मुहल्ले में महर्षि सत्यदेव के शिष्य सत्यगोपाल ने आश्रम स्थापित किया था जहां उन्होंने दुर्गा पूजा की एक नई पद्धति आरम्भ की, जिसमें वे स्वयं को इष्ट मानकर पूजा-आराधना करते थे। उनके पुत्र शंकर चटर्जी दुर्गा, सरस्वती आदि की मूर्तियां बनाते थे। सनत के बड़े भाई ने उनसे अपने लिए कोई चित्र बनवाया, जिसे देख कर इन्होंने भी अपने लिए एक चित्र बनवाने का आग्रह किया। परन्तु जब शम्भु चटर्जी ने बालक सनत को केवल दो एक रेखाएं खेंच कर झुटलाने की कोशिश की तो उससे इन्हें बड़ा असन्तोष हुआ और स्वयं चित्र रचना करने की ठान ली। शंकर चटर्जी मूर्ति रचना करते समय किसी को पास नहीं फटकने देते थे परन्तु हठी बालक सनत तखत के नीचे छिप कर बैठ जाता और पूरी रचना प्रक्रिया देखता रहता और घर आकर स्वयं ही कुछ न कुछ बनाता रहता। एक दिन जब शंकर चटर्जी को इस बालक ने अपनी रचनाएं दिखाकर कुछ बनवाने का निवेदन किया तो शंकर चटर्जी ने उसे एक मट्टी का टुकड़ा देते हुए यह कह कर टाल दिया कि ऐसी मट्टी ढूंढ़कर लाओ तब कुछ बनाकर देंगे। अब क्या था यह हठी बालक

मट्टी की खोज में निकल पड़ा। मट्टी की विशेष पहचान के लिए वह मट्टी को चखकर परखता। अन्ततः उसी स्वाद की मट्टी लेकर जब वह घर पहुंचा तब तक बालक के खो जाने की सूचना पुलिस को दी जा चुकी थी। दूसरे दिन उस मट्टी को देखकर शंकर चटर्जी आश्चर्य चकित रह गए और बड़े प्रेम से मूर्ति बनाई। परन्तु सनत को यह कह कर नहीं दी कि तुम इसे तोड़ दोगे। इस उपेक्षा को सहन न कर पाने के कारण इस बालक ने स्वयं उसी मट्टी से मूर्ति बनाने का प्रयास आरम्भ कर दिया और अल्पायु में प्रथम बुद्ध मूर्ति बनाने के कारण उनके स्कूल के प्राचार्य श्री सुधीर चौधरी ने उनको गोद में उठा कर 2000 छात्रों के सामने उनकी प्रतिमा की प्रशंसा की। यह मूर्ति इलाहाबाद के कर्नलगंज स्कूल में आज भी सुरक्षित है। इनके पिता रेलवे में एकाउंटेंट थे, उनका इलाहाबाद से पटना स्थानान्तरण हो गया। वहां इन्हें न रंग मिला न कागज़। एक दिन इन्होंने शरत बाबू के उपन्यास पर आधारित चलचित्र 'उदयेर पोथे' में देखा कि नायक कोयले से दीवारों पर महापुरुषों के चित्र बनाता है। इस प्रेरणा को लेकर इन्होंने भी विवेकानन्द, सुभाष, अरविन्द, टैगोर आदि के चित्र बना डाले, जिन्हें देख कर इनके पिता जी के एक मित्र ने चार आने का एक रंग का डब्बा और कागज़ इन्हें लाकर देते हुए इनसे अपनी मां का चित्र बनवाने का आग्रह किया। वह चित्र भी ठीक बन गया और इन्हें जल-रंगों से चित्र बनाने की इच्छा हुई। एक बार इलाहाबाद के कुम्भ मेले में वाटर कलर बाक्स एक रुपये का मिल रहा था पर इनकी जेब में केवल अठन्नी थी। इनके पिता जी के एक मित्र श्री निताई बनर्जी ने शेष आठ आने देकर इन्हें वह खरीदवा दिया और मेला छोड़ कर इन्होंने सारा समय चित्र रचना में लगा कर पूरी ड्राइंग कापी भर डाली।

अब इनके पिता जी का स्थानान्तरण कलकत्ता हो गया। वहां पाठशाला में प्रवेशार्थ जब परीक्षा देने गए तो साथ में अपनी बनाई नर्गिस (सिने-तारिका) की पोर्टरेट भी ले गए, जिसे देखकर आचार्य ने बिना परीक्षा के ही इन्हें प्रवेश दे दिया। कलकत्ता में सिनेमा घर के सामने बड़े-बड़े बैनर बनाते चित्रकारों को भी देखते रहते थे। इनके बड़े भाई अरुण इन्हें कला-कर्म के लिए निरन्तर प्रेरित करते रहते थे, और पांचवीं-छठी कक्षाओं में पढ़ते-पढ़ते दुर्गा, सरस्वती की मूर्तियां बनाने लगे थे। सब से पहली आमदनी इन्हें मां मरियम और शिशु ईशु के चित्र से दस रुपये की हुई थी। दुर्भाग्यवश इसी समय इनके बड़े भाई की मृत्यु हो गई और यह नितांत अकेले पड़ गए। इस एकाकीपन में कला रचना ही इन्हें एकमात्र सहारा रहा। पिताजी पुनः लखनऊ आ गए और ऐंग्लो बेंगाली स्कूल में सुभाष बोस का चित्र बना कर जब अपने प्राचार्य को दिखाया तो उन्होंने कहा कि कितना अच्छा हो यदि तुम असित कुमार हलदार से अपना सम्बन्ध जोड़ सको। दसवीं कक्षा में इन्होंने सरस्वती की एक ऐसी विलक्षण मूर्ति बनाई जिसको दिखाने के लिए लोग हलदार साहब (जो लखनऊ कला महाविद्यालय के प्राचार्य पद से बहुत पहले सेवा निवृत्त हो चुके थे) को बुलाकर लाए। हलदार साहब ने उसे देखकर इन्हें कला प्रशिक्षण देने के लिए अपने पास बुलाया, परन्तु संकोचवश उनके पास न जाकर कला महा-विद्यालयों में प्रवेश ले लिया। वहां इनका बिल्कुल मन नहीं लगा और जब फिर हलदार साहब के पास गए तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि यदि मेरे पास सीखोगे तो कला महाविद्यालय नहीं जाओगे, अतः इन्होंने उसे छोड़ कर इण्टर में और भातखण्डे संगीत महाविद्यालय में प्रवेश ले लिया और हलदार साहब के पास कला प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे। एक साथ तीन-तीन अनु-शासनों में बंधे होने के कारण इंटर की परीक्षा में फेल हो गए, और अब अपना समस्त समय

कला और संगीत के अभ्यास में लगा दिया।

हलदार साहब ने इन्हें अपने विशेष शिष्य के रूप में स्वीकार किया था इसी कारण दिन के अधिक समय में यह उन्हीं के पास रहते थे। 1955 में इन्होंने हलदार साहब के आदेश पर चैतन्य महाप्रभु की जीवनी पर शोध करके चित्र शृंखला तैयार करने का संकल्प लिया। इस कार्य में यह इतने निमग्न हो गए कि मानसिक रूप से विक्षिप्त हो गए। इनके नाना डा० काली बनर्जी आयुर्वेदाचार्य थे और इनकी मानसिक चिकित्सा हेतु इन्हें तीन चित्र बनाने को कहा। 1 पद्म मधु, 2. धन्वन्तरि, 3. रामायण का कोई विषय। इस प्रकार सनत पुन: स्वस्थ हो गए। इन दिनों हलदार साहब बंगलौर में डिज़ायनसेंटर के निदेशक होकर रहने लगे थे और उन्हें लगा कि बिना किसी डिप्लोमा या डिग्री के सनत को कोई नौकरी नहीं मिल सकेगी। अत: 1957 में कला महाविद्यालय में द्वितीय वर्ष में प्रवेश लिया और 1961 में चित्रकला में सुधीर खास्तगीर के प्राचार्यत्व में डिप्लोमा प्राप्त किया। इस समय इन्हें उड़ीसा विश्वविद्यालय में दस हज़ार रुपये का कार्य मिला परन्तु जब 1962 में हिमाचल सरकार ने नाहन में कला महाविद्यालय की स्थापना की तब श्री हलदार ने कला प्रसार व प्रचार हेतु तत्कालीन उपराज्यपाल राजा भद्री से अनुरोध करके इन्हें इसमें प्राध्यापक पद ग्रहण करने पर बल दिया क्योंकि उनका विचार था कि जिस प्रकार औरंगजेब के शासनकाल में कला-साधकों ने पहाड़ों में शरण लेकर भारतीय कला को जीवित रखा उसी प्रकार तुम भी हिमाचल में जाकर भारतीय कला परम्परा को जीवित रखो जिसका मैदानों में पाश्चात्य प्रभाव के कारण गला घुट रहा है। तब से सनत कुमार हिमाचल में रहकर न केवल अध्यापन ही कर रहे हैं अपितु निरन्तर अपनी कला-साधना में लीन रह कर सर्जनात्मक कार्य भी कर रहे हैं। सन 1979 में कला महाविद्यालय बन्द होने पर आप राजकीय महाविद्यालय शिमला में अध्यापन कार्य कर रहे हैं परन्तु प्रत्येक रविवार को अपने घर पर बच्चों को नि:शुल्क कला प्रशिक्षण देते रहते हैं, जिससे परम्परा अक्षुण्ण बनी रहे।

52 वर्ष की आयु में सनत कुमार ने जितना कला कर्म किया है, साधारण कलाकार को उतना करने के लिए दो-तीन जीवनों की अपेक्षा रहेगी। लगभग 9000 से ऊपर मौलिक चित्र संरचनाएं और 1000 से ऊपर पत्थर, काष्ठ, पलास्टर और मिट्टी की मूर्तियां बना चुके हैं। व्यक्ति चित्रों (पोर्टरेट) की तो गिनती ही नहीं है। चैतन्य महाप्रभु के जीवन पर आधारित इन्होंने 16 चित्र बनाए हैं। भारतीय गीत की 22 श्रुतियों की चित्र-शृंखला पर पं० रविशंकर ने प्रशंसा-पत्र दिया है। पाणिनि के 14 सूत्रों (अइउण ऋलृक् आदि) पर आधारित 14 चित्र; हरिजनोद्धार को वैदिक युग से गांधी युग तक बांध कर 14 चित्र; मूल्यहीन शून्य से समूल्य शून्य तक के 11 चित्र; अग्नि, वायु, जल, पत्र, पुष्प एवं फल के 6 चित्र; कुमार संभव काव्य पर आधारित 12 चित्र; पहाड़ी विषयों पर 40 चित्र; बुद्ध चरित् के 12 चित्र; दस महाविद्याओं के 10 चित्र; इस प्रकार से कितनी ही चित्र शृंखलाएं इन्होंने तैयार की हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने बहुत लम्बे आकार के 4 स्क्रॉल भी अब तक बनाएं हैं: जिनके आकार 75′×5′; 90′×8′; 92′×9′; 94′×10′ हैं जिनके विषय क्रमश: ये हैं: 1. डार्विन का विकासवाद और 12 राशियां; 2. जैविक और आध्यात्मिक फ़्यूज़न; 3. आधुनिक विज्ञान और भारतीय दर्शन पर आधारित अणु विस्फोट; 4. ऊर्जा और बल, जिसको महानिर्वाण तन्त्र और शक्ति तन्त्र तथा आधुनिक विज्ञान पर आधारित किया गया है।

जहां तक मूर्तिकला का संबंध है सनत कुमार ने नाहन में शान्ति संगम की स्थापना करके वहां विभिन्न मतों और पंथों पर आधारित 22 दीर्घाकार मूर्तियां बनाई हैं, साथ ही वाल्मीकि रामायण पर आधारित अनेक भित्ति-चित्र भी। रेनुका झील की परिक्रमा में इनकी 8 मूर्तियां आज भी लगी हैं। इनकी बनाई अनेक मूर्तियां सराहन, लखनऊ, नाहन और शिमला में भी हैं। दुर्गा और सरस्वती की मूर्तियां बनाने में तो सनत कुमार सिद्धहस्त हैं परन्तु पोर्टरेट और संयोजनाओं में भी पीछे नहीं हैं। इसके अतिरिक्त यह बहुत ही अच्छे कवि, गायक और सितार वादक भी हैं। बंगला भाषा में रचित इनके गीत कल्पना और भाव प्रधान हैं जिन्हें यह स्वयं बहुत मधुर कण्ठ से गाते हैं।

27 वर्षों की कला साधना के बाद इनका मानना है कि खाली जगह अनन्त है और सब शक्तियों में मन्त्र-शक्ति सबसे महान है। दार्शनिक रूप से इनका विश्वास त्रैतवाद में है, जिसमें पुरुष, प्रकृति और परमात्मा इन तीनों की सत्ताओं को निरपेक्ष मानते हैं। प्राचीन दर्शन और प्राचीन कला परम्परा में अटूट विश्वास रखते हुए भी सनत कुमार आधुनिक विज्ञान से विमुख नहीं हैं, अपितु विज्ञान की नई से नई जानकारी की पुष्टि प्राचीन भारतीय दर्शन में खोज निकालते हैं।

सनत कुमार की चित्र-कला की विषय वस्तु का अनुमान तो पाठक उपरोक्त विवरण से सहज ही लगा सकते हैं परन्तु इनकी प्रविधि और शैली भी विषय-वस्तु के अनुरूप है। कला-गुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने जिस परम्परा का सूत्रपात किया था उसी का अनुसरण करते हुए सनत कुमार ने 'वाश' तकनीक में ही अधिकांश चित्र बनाए हैं, और जहां तैल्य रंगों से चित्र बनाने पड़े हैं वहां भी इसी प्रक्रिया की छटा दिखाई पड़ती है। रेखाओं की दृढ़ता के साथ-साथ तरलता और रंगों का रहस्यमय सामंजस्य इनकी शैली की विशेषता है। दृश्यमान् जगत और अन्त: चेतना ही इनके प्रेरणा-स्रोत हैं। इनका विचार है कि जो व्यक्ति space में positive और negative को नहीं देख पाता वह चित्र रचना कहां कर पाएगा। केवल रंग और रूप (colour and form) को लेकर अथवा बड़े गहरे मनोवैज्ञानिक तथ्यों को लेकर जो आधुनिक कला रचना चल रही है वह कहां सफल है। वह तो केवल विद्रूप को ही पकड़ रही है जो न सत्य है न शिव। कला के मर्म को पहचानने के लिए गुरु की अवहेलना नहीं की जा सकती। गुरु की बात चलते ही गुरु-भक्ति के आवेश में आकर सनत कुमार का मुंह लाल-लाल पड़ जाता है और वह अनायास बोल उठते हैं—

"आज के समय में गुरु को गाली देकर ऊपर चढ़ पाओगे क्या ?

चढ़कर दिखाओ तो !" □

कलाविधाओं के विविध फलक

☐ कलाधर

पिछले दिनों कला के प्रोत्साहन एवं प्रसार हेतु विभाग द्वारा जो आयोजन समय-समय पर होते रहे हैं उनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय चार प्रदर्शनियाँ राज्य संग्रहालय में और चार वाई० डब्लू० सी० ए० में आयोजित की गईं। संग्रहालय में ही कला-1987 नाम से अखिल भारतीय वार्षिक कला प्रदर्शनी 26 अगस्त से 9 सितम्बर तक दर्शकों के लिए खुली रही। इसमें 79 कलाकारों की 144 कलाकृतियों में से केवल 44 कलाकारों की 67 कृतियों को उपयुक्त मानकर प्रदर्शित किया गया। निर्णायक समिति के 2 सदस्य कृष्ण खन्ना और डा० पुष्कर नाथ थे, जिन्होंने निम्नलिखित पुरस्कारों को अनुशंसित किया।

हिमाचल के कलाकार

1. हंसराज धीमान : वंगद्वारी
2. सुरजीत सिंह : दीवार 1986

हिमाचलेतर कलाकार

वी० कृष्ण देवादिगा : राजनीति

2. सुभाषचन्द्र : रूप क्रीड़ा

निर्णायकों के अनुसार, इस प्रदर्शनी के लिए प्राप्त हुई प्रविष्टियां प्रत्याशित स्तर की नहीं थीं, विशेषतः हिमाचालेतर कलाकारों की। उद्घाटन विधान सभा की अध्यक्षा श्रीमती विद्या स्टोक्स ने किया जिन्होंने प्रदेश में साम्प्रतिक कला प्रशिक्षण के अभाव को देखते हुए निदेशक श्रीनिवास जोशी से आग्रह किया कि इस प्रकार की सुविधाएँ संग्रहालय में मुहय्या की जाएँ, और यह निश्चित हुआ कि प्रतिभा-सम्पन्न कला प्रशिक्षणार्थियों के लिए कक्षाओं का आयोजन शीघ्र ही किया जाएगा।

जो चित्र प्रदर्शित किये उनमें काफ़ी विविधता थी, मसलन एक ओर कांगड़ा और चम्बा शैलियों में बने चित्र और दूसरी ओर आधुनिक एब्स्ट्रेक्ट रचनाएँ। इन दोनों छोरों के मध्य भूदृश्य, व्यक्ति-चित्र, भाव-चित्र, संयोजनाएँ, स्वप्नचित्र आदि अनेक माध्यमों में प्रस्तुत किये गये जैसे, तैल्य रंग, जल रंग, टेम्परा, पेन्सिल, स्याही, काष्ठ मुद्रण, एचिंग आदि। मूर्तिकला में काष्ठ मूर्तियों की प्रधानता रही, केवल एक मुखौटा पीतल का था।

स्तरीयता की दृष्टि से देखा जाए तो होशियारपुर के अश्वनि कुमार वर्मा की लैंड्स्केप

और पोर्टरेट सराहनीय हैं । शिमला के नवयुवक चित्रकार हिम कुमार के दो तैल्य चित्र प्रतिभा के अंकुरण का संकेत करते हैं । धर्मशाला की किरण जसवाल का गीतगोविन्द का चित्र और ओम् सुजानपुरी के 'प्यास' और "वार घर मेरा पार तेरा हो' प्राविधिक कौशल के उदाहरण हैं। इसी तरह अन्य अनेक अच्छी कृतियां भी हैं जिनका विवरण स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं है ।

एकल चित्र प्रदर्शनियों में दो तरुण चित्रकारों अनिल कुमार रैणा और नैनसिंह चौहान की चित्र प्रदर्शनियां और मनमोहन एवं कर्मसिंह की छायाचित्र प्रदर्शनियों ने दर्शकों की अच्छी संख्या को आकृष्ट किया । 4 अगस्त को श्री हरभजन सिंह विधायक द्वारा उद्‌घाटित रैणा की प्रदर्शनी में पहाड़ी शैली पर आधारित 32 चित्र थे, जिनमें राग-रागिनियों, नायिका भेदों, कृष्ण लीला, व्यक्ति चित्रण और बारह मासा के विविध विषय प्रस्तुत किये गये ।

अनिल कुमार पहाड़ी चित्र परम्परा के जाने-माने चित्रकार चन्दूलाल रैणा के पुत्र हैं जिनके पूर्वज कश्मीर से आकर कांगड़ा में बस गए थे । अनिल ने बाल्यकाल से ही चित्र शिक्षा अपने पिता से पाई । कांगड़ा कलम को आज के युग में भी जीवित रखने में उनका प्रचुर योगदान है । परन्तु, परम्परा केवल अनुकृतियों के बल पर सशक्त नहीं हो सकती । आविष्कार और मौलिकता परम्परा को सिंचित करते हुए आगे बढ़ाते हैं । इन चित्रों में हाथ का बना सियालकोटी काग़ज़ परम्परा के अनुसार ही वसली बनाने के लिए प्रयुक्त हुआ है, परन्तु रंग तो आजकल बाजार में मिलने वाले अधिकांशतः पोस्टर रंग और जलरंग ही हैं, जो चित्रों को अधिक समय तक ताज़ा रखने में समर्थ नहीं हो सकते । परन्तु इन चित्रों की अभी तक खपत है और चित्रकार कलाकर्म के बल पर जीवन यापन कर लेता है यह परम्परा के लिए उत्साहवर्द्धक बात है । कला-पक्ष के साथ यदि भाव-पक्ष भी समन्वित हो सके तो अनिल कुमार परम्परा को अग्रसित करने में कुछ निजी योगदान भी दे सकेंगे ।

नैनसिंह जिला सिरमौर की रैणुका तहसील के रहने वाले हैं और इन्होंने उच्च कला शिक्षा जालन्धर से प्राप्त की । चित्रकला में एम० ए० करने के बाद सराहां (सिरमौर) के वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय में कला शिक्षक के पद पर कार्यरत हैं । इनकी चित्र प्रदर्शनी शिमला में लगी और इसमें भूदृश्य, व्यक्ति-चित्र और संयोजनाएं अधिकांशतः तैल्यरंगों में ही थे । कुछ चित्रों को देखकर यह प्रमाण अवश्य मिलता है कि इस तरुण कलाकार के पास प्रचुर कल्पना है जैसे गेट के बाहर, दहेज, पंजाब, बिछुड़ने के बाद आदि । परन्तु तकनीकी पहलू दुर्बल होने के कारण कल्पना कलागगन में बहुत दूर तक उड़ान नहीं भर सकती । जहां अनिल रैणा का तकनीकी पक्ष दृढ़ होते हुए भाव-पक्ष कमजोर है वहां नैन सिंह केवल कल्पना के धनी हैं और कला क्षमता होते हुए भी उसका यथोचित विकास नहीं कर पाए । आवश्यकता इस बात की है कि कुछ समय तक ये कलाकार किसी योग्य गुरु के पथ-प्रदर्शन में अपनी साधना को पुख्ता करें ।

धर्मपुर (सोलन) के युवा छायाकार **मनमोहन सिंह** के पर्वतीय दृश्यों की प्रदर्शनी शिमला में 18 से जून से 20 जून तक हुई । उनके 23 रंगीन छायाचित्रों में एक ऐसी प्रतिभा का अंकुर दिखाई पड़ता है जो अनुकल परिस्थितियों को पाकर बहुत कुछ विकसित हो सकती है । दर्शकों की दृष्टि सर्वप्रथम उन चित्रों की ओर आकृष्ट होती है जिनमें मनाली तथा अन्य सुरम्य पहाड़ी स्थलों का छायांकन हुआ है । सेथू गांव के चित्र में सूक्ष्म रंग और टोन मिलकर अच्छी

सयोजना बनाते यदि चित्र के एक कोने में हठात् एक व्यक्ति को खड़ा न किया गया होता। इसी प्रकार सोलंग, बातल, अलेऊ, परिनी आदि ग्रामों के दृश्य भी आकर्षक संयोजना के अतिरिक्त रंग और रूप की मनमोहकता भी अपने अन्दर समेटे हुए हैं। विशिष्ट गांव का वह दृश्य जिसमें घास के ढेर के पास एक झोंपड़ी के नीचे सोनाल-मनाल नदी लहरा रही है, अपनी वर्णन शैली से एक गीतात्मक वातावरण की सृष्टि करता है। गांव बातल के मैदान के दृश्य में भी अत्यन्त कोमल टोन और टेक्सचर की व्यंजना हुई है, यद्यपि एक स्मारक शिला के चित्र में केन्द्रीय स्थान ले लेना खटकता-सा है।

कुछ चित्रों में संयोजनात्मक तत्त्वों का बिखरा होना या फिर उनका समुचित उपयोग न कर पाना मनमोहन की कला को रिपोर्टिंग मात्र के स्तर पर ला रखते हैं। पार्श्व-स्थल और अग्रस्थल का अपने-अपने क्षेत्रफल तक सीमित रहकर एक चित्र को संयोजित कर देना एक ऐसी कला है जो किसी साधारण से निगेटिव से भी श्रेष्ठ कोटि के चित्र निकाल सकती है। मनमोहन की मजबूरी है कि इस कार्य हेतु उन्हें व्यावसायिक छायाकारों पर निर्भर रहना पड़ता है, जो संयोजन की ओर से उदासीन रहकर निगेटिव को जैसा का तैसा इन्लार्ज कर देते हैं। कला-दृष्टि से यह सत्य है कि इनके अनेक हिमाच्छादित और ग्राम्य दृश्य ऐसे हैं जिनमें प्रचुर चित्र-सामग्री निहित है, परन्तु प्रिंट बनाते समय चयनाप-चयन, छाया-प्रकाश का उचित प्रयोग और रंगों के सन्तुलन पर पूरा ध्यान रखा जाए तो अनेक सफल चित्र बन सकते हैं।

मनमोहन आजकल 'जनसत्ता' दैनिक के लिए खेलकूद के कार्यक्रम छायांकित करते हैं। उनके लिए यह सौभाग्य की बात है कि प्रदर्शनी का उद्घाटन करने के बाद राज्य वन मन्त्री श्री चन्द्र कुमार ने उन्हें प्रोत्साहित करते हुए आमन्त्रित किया कि वे हिमाचल के वनों में निहित प्रचुर सम्पदा को अपने कैमरा द्वारा रूपांकित करें, यद्यपि इस कार्य में अत्यधिक धैर्य और तितिक्षा अपेक्षित है।

ट्रिब्यून समवाय के प्रसिद्ध छायाकार **कर्मसिंह** के लगभग 65 छाया चित्रों की प्रदर्शनी 27 जुलाई से 29 जुलाई तक शिमला में हुई। आजकल कलर फ़ोटोग्राफ़ी के समय में यदि कोई छायाकार ब्लैक ऐण्ड व्हाइट में ही समस्त चित्रों की प्रदर्शनी प्रस्तुत करे तो यह सहज ही समझा जा सकता है कि मात्र ऐन्द्रिकता से हट कर उसके पास कहने को इतना कुछ है कि दर्शकों तक पहुँचने के लिए वह रंग को बाधा ही मानता होगा। इनके चित्रों को विषय वस्तु की दृष्टि से तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—1. मानव जीवन; 2. पशु-पक्षियों का जीवन; और 3. प्राकृतिक दृश्य। मानवीय चित्रण में 'बूढ़ा आदमी' का छायाचित्र सर्वाधिक प्रभावशाली है जिसमें कच्ची झोंपड़ी के आगे टूटी चारपाई पर बैठा एक ग्रामीण वृद्ध अपने ही विचारों में निमग्न है। संयोजना इसकी अत्यन्त कुशल है। इसी प्रकार 'माग में शयन', 'पीढ़ी अन्तराल', और 'दूध पिलाने का समय' दलित वर्ग के दैनिक जीवन को सम्वेदना युक्त ढंग से प्रतिबिम्बित करते हैं। 'चीखता हुआ शिशु', और 'दिवा स्वप्न' के द्वारा कलाकार ने समस्त समाज के समक्ष उन बच्चों का प्रतिवेदन किया है जिनको समय और समाज की क्रूर चक्की के दो पाटों के बीच पिसे रहकर बाल-सुलभ सुखानुभूति से भी वंचित रहना पड़ता है। दूध की खाली बोतलों में बची दूध की चन्द बूंदों को इकट्ठा करते बच्चे इन निरपराध अभावग्रस्त मासूमों की दयनीय दशा की कहानी है। 'वे दो' में अभावग्रस्त होते हुए भी ग्राम्य दम्पति के आपसी प्यार का सुन्दर चित्रण है जिसमें एक आदमी अपनी औरत के सर में से जुएं बीन रहा है, मानो कला-

कार कहना चाहता हो कि सुख से सम्पन्न वर्ग नितांत्त विपन्न है यदि प्यार की दौलत उसके पास न हो ।

पशु-पक्षियों के चित्रों में सबसे अधिक संवेदनीय एक गिद्ध का है जो नलके के पास गरमी की कड़ी धूप में बैठा एक बूंद पानी की प्रतीक्षा में तरस रहा है । गज दम्पति की प्रेम-क्रीड़ा के दो चित्र बहुत अनूठे हैं । 'सिह परिवार' और 'रीछों का वृक्षारोहण' भी पशुजीवन के उन क्षणों से चुराए जान पड़ते हैं जब मानवीय भावनाओं का अवशेष उनमें भी उद्रेक करता है । अपने मालिक के दांतों का निरीक्षण करता बन्दर एक दन्तचिकित्सक के पूर्ण आत्म-विश्वास के गाथ 'दन्त परीक्षा' में दिखाया गया है । भूदृश्यों में 'हिमपात का जादू', 'कमलों का तालाब', 'सूखी धरती' और 'सान्ध्य प्रकाश' वहुत आकर्षक बन पड़े हैं ।

चित्रों को कोई नाम न देने पर भी चित्र तो चित्र ही रहेगा, परन्तु नामकरण से चित्र के गूढ़ार्थ को समझने में दर्शक को सहायता अवश्य मिलती है । कभी-कभी केवल देने में काव्य और कल्पना का सहारा चित्र में चार-चांद लगा देता है । कर्म सिंह भी यदि इस ओर ध्यान दें तो बुद्धि-जीवियों में उनकी कला की गुणग्राहकता अधिक हो सकती है ।

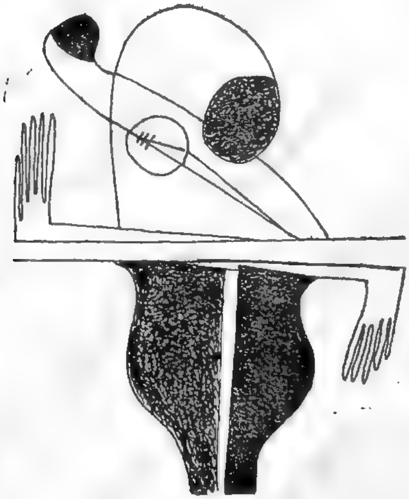

तृतीय नाट्य उत्सव : एक रपट

☐ राकेश वत्स

शिमला में रंगमंच की यदि कोई परम्परा रही है तो उसमें अंग्रेजी काल में बने गेयटी-थियेटर का बहुत योगदान है जहां अंग्रेजी साहब अपने मनोरंजन के लिए छोटा-मोटा थियेटर एवं बैले आदि किया करते थे। गेयटी-थियेटर को बने लगभग सौ वर्ष हो गये हैं किंतु इसकी रंगत आज भी वैसी ही है। कुल डेढ़-सौ प्रेक्षकों की क्षमता वाला थियेटर, छोटे एवं सीमित मंच के कारण किसी भी नाट्य-प्रस्तुति की सीमा बांध देता है एवं रंगकर्मियों के लिए कठिनाइयां पैदा कर देता है; लेकिन शहर में किसी और थियेटर के न होने से रंगकर्मी इसी से काम चलाते आ रहे हैं।

यह रंगकर्म के प्रति उत्साह का ही परिणाम है कि अच्छे थियेटर के अभाव में भी, हिमाचल का भाषा एवं संस्कृति विभाग गत तीन वर्षों से अखिल भारतीय स्तर पर 'नाट्य उत्सव का आयोजन करता आ रहा है, जिससे कुछ अच्छे नाटक देखने का अवसर महानगर से कटे हुए इस पहाड़ी-प्रदेश के लोगों को भी मिल जाता है। इस वर्ष 26 से 31 अक्तूबर तक भाषा एवं संस्कृति विभाग की ओर से आयोजित 'तृतीय नाट्य-उत्सव' में लगभग छह दीर्घ नाटकों का मंचन हुआ एवं मंचन के बाद नाट्य-प्रस्तुतियों पर परिचर्चा भी हुई, जिससे स्थानीय रंगकर्मियों को भी बहुत कुछ सीखने-समझने का अवसर मिला।

26 अक्तूबर की शाम कानपुर की नाट्य-संस्था **'इप्टा'** ने **डॉ. ओमेन्द्र कुमार** के निर्देशन में **भीष्म साहनी** के नाटक **'माधवी'** का मंचन किया। यह नाटक कर्त्तव्यपरायणता, दानवीरता और खोखले जर्जर आदर्शों की आड़ में माधवी के शोषण के मर्मस्पर्शी प्रतीकात्मक प्रसंग द्वारा नारी-शोषण के विभिन्न आयामों का चित्रण करता है। महाभारत की कथा पर आधारित इस नाटक का केन्द्रीय पात्र है—माधवी जो पिता ययाति की दानवीरता, पति गालव की गुरु-दक्षिणा एवं विभिन्न राजाओं की पुत्र-इच्छा की निमित्त बनकर निरन्तर शोषित होती है एवं अंत में दुत्कार दी जाती है। रंगमंच की संभावनाओं से युक्त इस नाटक को 'इप्टा' ने जिस प्रकार प्रस्तुत किया—उसने निर्देशक की अपरिपक्वता एवं रंगमंचीय दृष्टि एवं समझ के अभाव को ही रेखांकित किया। माधवी (ऋतु पुरोहित) के इतर अन्य सभी प्रमुख पात्रों (ययाति, गालव, विश्वामित्र, दिवोदास, हर्यश्च आदि) के चयन में ही नाटक को उपेक्षित किया गया। ययाति का चरित्र महाभारत एवं नाट्यलेख में भी एक गरिमामय, तेजोयुक्त तथापि कर्ण से भी उच्च दानवीर कहलवाने के दंभ से पीड़ित है, किंतु फूहड़, निरीह, निर्बल एवं तेजहीन कदापि नहीं।

किंतु इप्टा की इस प्रस्तुति में ययाति ऐसा हो निर्बल एवं फूहड़ बना दिया गया। यही दशा गालव के चरित्र की भी हुई जो वस्तुतः तपस्वी, बलशाली एवं हठी है। राजा हर्यश्च, दिवोदास के चरित्र भी दंभी, लालची, विलासी एवं छत्रपति राजा बनने की लालसा से युक्त न होकर किन्हीं विदूषकों के से चरित्र अधिक बन गये। निर्देशक का कार्य होता है नाटककार के अभिप्रेत को रंगमंचीयता द्वारा पुनर्प्रस्तुत करना। किंतु कई निर्देशक दृश्यबंध बनाकर, मंच-सज्जा एवं रूप-सज्जा कर, पात्रों से संवाद कहलवाने एवं प्रकाश-ध्वनि के चलताऊ प्रयोग द्वारा ही अपने धर्म एवं कर्म की इतिश्री समझ लेते हैं। इस प्रस्तुति में रंगमंचीयता की लगभग ऐसी ही दृष्टि-विहीन स्थिति रही। संवादों के उच्चारण तक ग़लत थे। अभिनय के नाम पर मात्र संवाद बोलना ही एवं मंच पर इधर-उधर घूमना ही शायद अभिनय समझा गया। ध्वनि प्रयोग तो कर्णकटु बनकर प्रेक्षकों को खासा परेशान करता रहा। सम्पूर्ण प्रस्तुति को किसी हद तक बांधने एवं प्रेक्षकों को आकर्षित करने का श्रेय माधवी का अभिनय कर रही ऋतु पुरोहित को जाता है, जिसने अपने चरित्र को निभाने का भरसक प्रयत्न किया।

प्रस्तुति के अगले रोज हुई परिचर्चा में स्थानीय समीक्षकों के अलावा प्रसिद्ध रंगकर्मी एवं अभिनेता सर्वश्री मनोहर सिंह भी एक समीक्षक के रूप में उपस्थित थे। परिचर्चा में कई समीक्षकों ने 'इप्टा' की इस दीर्घ किंतु उबाऊ प्रस्तुति की जमकर खिंचाई की। फलस्वरूप इप्टा के रंगकर्मी अपनी ही पांत से अलग हो गये और मुख्यतः निर्देशक पर उंगली रखकर सफाई देते रहे। जिससे नाट्य प्रक्रिया के कई पार्श्व पहलू भी उभर कर सामने आए।

27 अक्तूबर को **'संभव आर्ट ग्रुप'** दिल्ली ने **देवेन्द्रराज अंकुर** के निर्देशन में **नरेन्द्र मोहन** द्वारा लिखित नाटक **'कहै कबीर सुनो भई साधो'** का मंचन किया। कबीर की शाश्वता, सार्थकता और समसामयिकता संदेह से परे हैं किन्तु हाल ही में कबीर पर एक ओर तो भीष्म-साहनी का नाटक 'कबिरा बड़ा बाजार में' सशक्त रूप में सामने आया है, दूसरी ओर मास मीडिया दूरदर्शन ने एक श्रृंखला में कबीर का प्रदर्शन किया है। ऐसे में कबीर पर आधारित किसी नाटक की प्रस्तुति प्रेक्षकों की अपेक्षाओं को तुलनात्मक बना देती है।

'संभव' के 'कबीर' में नाटककार कबीर की वर्तमान युग में सार्थकता, समसामयिकता को ही रेखांकित करता है। इसलिए कथ्य के स्तर पर नया कुछ नहीं है। जो कुछ नवलता आ सकती थी वह इसकी रंगमंचीय प्रस्तुति में ही आ सकती थी। किंतु सम्पूर्ण प्रस्तुति देखकर, पात्रों के सफल एवं परिपक्व अभिनय के बावजूद वह सूत्र हाथ नहीं लगा जो नाट्यानुभूति को एक क्रम में बांधकर प्रेक्षकों की आशंसा का कारण बन पाता। पूर्ण प्रस्तुति दो भागों में बंटकर खंड-खंड होती जान पड़ी। आधी प्रस्तुति में कबीर के कवित्तों का गायन ही होता रहा और बाद की आधी प्रस्तुति कबीर के जीवन-चरित्र को प्रस्तुत करके पूर्ण हुई। निर्देशक का यह वक्तव्य भी समझ में नहीं आया कि 'अभी भले ही नाटक में वह शिल्प न मिले, जिसे हम नाटकीय कहना चाहेंगे, किंतु अपने सहज नाट्य-शिल्प में ही नाटक एक सशक्त मंच प्रस्तुति के लिए लिखा गया है।' ऐसे प्रयास किसी नाट्यलेख को परिपक्व अभिनय, गायन, प्रकाश-ध्वनि व्यवस्था द्वारा मंच पर निभा तो ले जाते हैं किंतु नाट्यात्मकता या नाट्यानुभूति की सृष्टि करने में असफल रहते हैं, अगले दिन हुई परिचर्चा में महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि 'संभव' के लगभग सभी रंगकर्मियों ने अपनी-अपनी भूमिका एवं नाटक में काम करते समय पैदा हुई कठिनाइयों का विश्लेषण करके नाटक में अपनी सक्रिय हिस्सेदारी एवं सूझ-बूझ का परिचय दिया।

28 अक्तूबर को **'अंकुर कला मंच'** मण्डी (हि० प्र०) द्वारा **श्रवण कुमार गोस्वामी** के नाट्य उपन्यास **'जंगलतन्त्रम्'** का **सुरेश शर्मा** के निर्देशन में प्रस्तुतीकरण हुआ। इस नाट्य उपन्यास की रचना तात्कालिक कारणों से सन् 1973 में हुई थी। नाटककार ने पच्चीस रातों (पच्चीस वर्षों) में नाटक के दृश्यों को बांधकर पशु-प्रतीकों (सिंह-सत्ताधारी, मोर-ब्यूरोक्रेट, नाग-व्यापारी वर्ग, चूहा-आम जनता) के माध्यम से लोकतांत्रिक व्यवस्था की कमजोरियों को उघाड़ने का प्रयास किया है। किंतु प्रस्तुति में यह नाटक प्रतीकों से मुक्त होकर भाषण एवं एक राजनीतिक नारेबाजी अधिक बन जाता है। जो सन् 87 में न तो कारगर ही नजर आती है और न ही समसामयिक। कारण यह है कि जिस राजनीतिक शोषण, भ्रष्टाचार, उत्पीड़न आदि की बात सीधे-सीधे यह नाटक करता है, वह प्रेक्षकों को संवेदना के स्तर पर कहीं भी उद्वेलित नहीं करता। ऐसे राजनीतिक नाटक बहुत हुए हैं किंतु इनका उद्देश्य तात्कालिक होता है और इस तात्कालिकता के बाद ये निरर्थक हो जाते हैं। नाटक के चुनाव के अतिरिक्त निर्देशन, अभिनय के स्तर पर भी नाटक में बहुत खामियां रहीं। प्रकाश-ध्वनि एवं मंचीय-सामग्री का प्रयोग बहुत कम किया गया। अगले दिन परिचर्चा में भी यह प्रश्न पूछा गया कि निर्देशक ने क्या सोचकर इस नाटक को चुना। निर्देशक ने जो जवाब दिए, उनसे निर्देशक की साहित्यिक एवं रंगमंचीय समझ का अभाव ही उभर कर सामने आया।

29 अक्तूबर की शाम जम्मू की **'नटरंग'** नाट्य संस्था ने **बलवंत ठाकुर** के निर्देशन में **प्रो० रामनाथ शास्त्री** द्वारा आलेखबद्ध, जम्मू की लगभग पांच सौ वर्ष पुरानी लोककथा पर आधारित नाटक **'बाबा जीतू'** डोगरी भाषा में प्रस्तुत किया। इस नाटक में एक नेक, ईमानदार, गरीब किसान को शोषण के विभिन्न आयामों में पिसता हुआ दिखाकर, ग्रीक त्रासदी की तरह अंत में बलिदान करते दिखाया गया है। बाबा जीतू अपने सम्बन्धियों के शोषण से तंग आकर पास के गांव में एक दोस्त के घर शरण लेता है। वहां जमींदार के शोषण का शिकार बनता है। अंत में अपनी असहाय स्थिति में आत्महत्या कर लेता है। उसकी छोटी लड़की भी आत्म-हत्या कर लेती है। बलवंत ठाकुर ने अगले दिन हुई परिचर्चा में बताया कि जिस गांव की यह लोककथा है वहाँ प्रतिवर्ष बाबा जीतू के नाम पर एक मेला लगता है, जहां लोकगायक गा-गा कर बाबा जीतू आख्यायन सुनाते हैं। बाबा जीतू जम्मू की लोक-संस्कृति का अभिन्न अंग है, इसलिए मूलकथा में परिवर्तन करना संभव नहीं था। निर्देशक का यह तर्क समझ में आता है, फिर भी नाटक का आदर्शवाद गले से नीचे नहीं उतरता।

इस नाट्य प्रस्तुति की सबसे बड़ी खूबी रही इसकी नाट्यात्मकता एवं रंगमंचीयता, जिसमें निर्देशक ने बड़ी सूझबूझ एवं परिपक्व रंगमंचीय दृष्टि से बाबा जीतू आख्यायन कहने के पारम्परिक तरीके 'कारकन' की वृतांत तकनीक का, नृत्यकला के संयोजनों में 'हर्न', 'कुड' एवं 'सोइयान' लोकरूपों की गतियों एवं ध्वनियों का तथा 'जातर' एवं 'गीतरू' लोकरूपों का संतुलित एवं रंगमंचीय प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त फिजीकल थियेटर का भी लोकतत्त्वों के साथ सम्मिश्रण किया है। सम्पूर्ण प्रस्तुति देखने के बाद निर्देशक का यह वक्तव्य काफी दूर तक सार्थक लगता है कि सम्पूर्ण प्रस्तुति इन लोकरूपों तक ही सीमित नहीं है अपितु इन लोकरूपों के मिश्रण द्वारा समसामयिक रंगमंच के मुहावरे की तलाश का प्रयास किया गया है।

'अपने रंगमंच' की तलाश हिन्दी में अभी तक बनी हुई है। पश्चिमी नाटकों का प्रभाव ग्रहण कर, अनुवाद, या भारतीय के नाम पर लोकतत्त्वों का छौंक लगाकर तो बहुत से नाटक

लिखे गये एवं प्रस्तुत किये गये हैं, किंतु 'अपने रंगमंच' की धारणा अविकसित ही दिखाई पड़ती है। यह तो तय है कि 'अपना रंगमंच' अपनी ही जमीन से, अपनी ही जड़ों से विकसित हो सकता है। इस बात को मद्देनजर रखकर लिखे गये नाटक भी आधे-अधूरे ही रह जाते हैं। कारण शायद यही है कि इनमें जुड़ाव कम एवं आयातित तत्त्व अधिक हैं फिर वह आयात चाहे अपने ही लोक से क्यों न हो। इस दृष्टि से 'बाबा जीतू' एक आशा लेकर सामने आता है क्योंकि इसमें लोकरंग, लोकरूपों एवं लोकतत्त्वों का प्रयोग आयात करके नहीं जमीन से जुड़कर किया गया है। इसलिए 'बाबा जीतू' की प्रस्तुति कथ्य के स्तर पर प्रभावित न करते हुए भी 'अपने रंगमंच' के एहसास को पुख्ता करती है। अगले दिन हुई परिचर्चा में सभी समीक्षकों ने भी इस बात को रेखांकित किया। सर्वश्री मनोहरसिंह ने भी अध्यक्षीय चुप्पी तोड़कर इस नाटक पर बातचीत की।

30 अक्तूबर को शिमला के स्थानीय **'समन्वय'** ग्रुप ने **प्रवीण चांदला** के निर्देशन में **महेश एल कुंजवार** द्वारा लिखित नाटक **'होली'** का एकांकीय मंचन किया। मूल नाट्यालेख हॉस्टल जीवन की भीतरी जिंदगी को, विद्यार्थियों के असंतोष एवं आक्रोश को अभिव्यक्त करता है और टैलीफिल्म के रूप में दूरदर्शन इसे प्रस्तुत कर चुका है। विद्यार्थी जीवन में हॉस्टल में रह रहे विद्यार्थी जिस 'गाली कोश' का बहुतायत में इस्तेमाल करते हैं—वह नाट्य लेख का भी अंग है। किंतु निर्देशक ने गालियों वाले एवं सैक्स वाले अंशों को ही मूल नाटक मानकर प्रेक्षकों को लगभग चालीस मिनट तक चमत्कृत कर दिया। कम्बार, तेंडुलकर आदि नाटककार भी इस तरह की निम्न रुचियों को उत्साहित करने में कोई कसर नहीं छोड़ते। गालियाँ या सैक्स जहाँ कथ्य का अंग बनकर आये, वहीं उसका सीमित सांकेतिक उपयोग ही श्रेयस्कर होता है। लेकिन इस प्रस्तुति में माँ-बहन की गालियों से निर्देशक क्या पाने की आशा रखे हुए थे, समझ से परे रहा। फलतः यह प्रस्तुति नाटक के नाम पर एक भदेस माहौल ही बना पाई। परिचर्चा में भी समीक्षकों ने या तो इस प्रस्तुति पर कोई भी कमेंट करने से इन्कार कर दिया या इसे नकार में ही रेखांकित किया।

31 अक्तूबर को लखनऊ की **'मेघदूत'** नाट्य संस्था ने **राकेश** द्वारा लिखित नाटक **'रामलीला'** का **सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ** के निर्देशन में मंचन किया। नाटक में रामलीला को समसामयिक संदर्भों से जोड़ने का कोई प्रयास नहीं है अपितु समसामयिक संदर्भों में यह नाटक रामलीला को एक वस्तु विशेष के रूप में चुनता है। मजदूरों की बस्ती में रामलीला की तैयारी चल रही है। मुसलमान भी इसमें शामिल हैं। उनके लिए यह धार्मिक आयोजन न होकर एक सामूहिक सांस्कृतिक आयोजन है। आर्थिक सहयोग के बहाने एक सेठ इसमें प्रवेश करता है। वस्तुतः वह रामलीला मैदान को हड़पकर वहाँ भवन बनाना चाहता है। सेठ मजदूरों में फूट का बीज डालकर मुसलमानों को रामलीला से अलग कर देता है। रामलीला मैदान पर एक धनी मुसलमान अली की भी नजर है। सेठ हिंदुओं को एवं अली मुसलमानों को भड़का कर दंगे करवा देते हैं एवं गुंडों द्वारा मजदूरों की बस्ती जलवा देते हैं।

यथार्थवादी अभिनय शैली, पात्रों का परिपक्व अभिनय, कुशल दृश्यबंध एवं प्रकाश एवं ध्वनि का प्रयोग नाटक की केन्द्रीय वस्तु को प्रेक्षकों तक पहुँचाने में तथा नाट्यात्मक द्वन्द्व को गहराने में बहुत सफल रहा। लगभग हर पात्र ने अपने चरित्र को सम्पूर्ण रूप से उद्‌घाटित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। विशेषकर राम, रावण, सेठ, विनोद, अली, बड़ेमियां, मौलवी एवं

सूत्रधार के अभिनय में क्रमशः विनय, सिद्धार्थ, प्रभु दयाल, राजेन्द्र निगम, अनिल, आत्मजीत, मेराज आलमखान एवं मिर्जा सईद बेग ने अपने कुशल अभिनय के द्वारा बहुत प्रभावित किया। सूत्रधार का प्रयोग एवं गायन शैली द्वारा कथा को गति प्रदान करने में निर्देशक सफल रहा। वस्तुतः इस प्रकार की विचारधारात्मक नाट्य-प्रस्तुतियां जो सीधे-सरल ढंग से प्रेक्षकों तक अपनी बात पहुँचाना ही अन्तिम उद्देश्य समझती हैं, कई बार अखबारी या नारे बनकर असफल भी हो जाती हैं। किंतु 'रामलीला' नाटक मंजे हुए अभिनेताओं के कुशल अभिनय एवं निर्देशक की सही पकड़ के कारण साम्प्रदायिक शक्तियों, व्यवस्था और इजारेदारों की सांठ-गांठ को बेनकाब करने में पूर्णतया सफल रहा। ●

गुलेरी जयन्ती समारोह : नाहन

हिन्दी के प्रख्यात कहानीकार स्वर्गीय पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 104 वीं जयन्ती पर गत दिनों नाहन में दो दिवसीय राज्य स्तरीय समारोह का आयोजन किया गया।

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी के तत्वाधान में आयोजित समारोह में लेखक गोष्ठी एवं कवि सम्मेलन हुआ।

पहले दिन, कवि गोष्ठी के करीब 20 कवियों ने अपनी कविताएं पढ़ीं। मगर इसे जनवादी कविता की विडम्बना ही कहा जाएगा कि अधिकांश कविताएं प्रभावहीन रहीं। लगा हिन्दी कविता एक भटकन की शिकार हो गई है। अनेक लेखकों ने समसामयिक विषय तथा आसपास के मौहाल को छूने का प्रयास अवश्य किया लेकिन श्रोताओं का रिसपान्स शून्य ही रहा।

कवि गोष्ठी की अध्यक्षता स्थानीय विधायक श्री अजय बहादुर सिंह ने की। उन्होंने इस अवसर पर पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की रचनाओं को शाश्वत मूल्यों का साहित्य बताते हुए कहा कि इस प्रकार के आयोजन नाहन के बुद्धिजीवियों में प्रेरणा का संचार करेंगे। कवि गोष्ठी के अन्त में डा० बच्चन सिंह ने श्रोताओं को संबोधित करते हुए गुलेरी जी पर राष्ट्रीय स्तर पर समारोह आयोजित करने का सुझाव दिया।

दूसरे दिन लेखक-गोष्ठी में दो 'शोध पत्र' पढ़े गए। पहला आलेख डॉ० पीयूष गुलेरी प्रस्तुत किया। विषय था 'हिमाचल की आधुनिक हिन्दी कहानी पर पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का प्रभाव' दूसरा विषय 'गुलेरी की कहानियों के पुरुष पात्रों का चरित्र-चित्रण' था लेकिन पत्र लेखक डॉ० बच्चन सिंह ने इसे स्वयं ही बदल कर 'गुलेरी की कहानियों में नायक की परिकल्पना' कर दिया था।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी पर डा० पीयूष द्वारा प्रस्तुत आलेख उद्धरणों के जंगल में भटकता रहा और विषय को छूने में कतई असमर्थ रहा।

आलेख पर प्रथम प्रतिक्रिया प्रस्तुत की अकादमी के सचिव डा० बंशीराम शर्मा ने। उनका मत था कि डा० पीयूष विषय से न्याय नहीं कर पाए। उनका कहना था कि चूंकि शोध पत्र अकादमी की पत्रिका 'सोमसी' में प्रकाशित होगा इसमें डा० पीयूष चाहे तो परिवर्तन कर सकते हैं।

डा० अनिल राकेशी का विचार था कि हिमाचली कथाकार इस कदर पिछड़े नहीं है कि आसपास के वातवरण या समसामयिकता से विमुख होकर गुलेरी की परम्परा को बढ़ाएं। उन्हें आलेख में अनेक विसंगतियां दिखाई दीं। तुलसी रमण ने कहा कि विषय तथा पत्र लेखक का चयन सही होना चाहिए। उनके अनुसार एक तो विषय ही ठीक नहीं था और दूसरा पत्र लखक ऐसे ठहरे जिनके लिए सब कुछ स्वयं स्पष्ट, स्वयं सिद्ध रहा। विषय का व्यापक अध्ययन व विश्लेषन क्षमता शोध पत्र लेखक की पहली शर्त है।

डा० मनोहर लाल के मुताबिक शोध पत्र में विषय के आसपास भी नहीं फटका गया था। गुलेरी जी की कहानियों की मूलभूत विशेषताओं को नहीं उठाया गया।

डा० बंशी राम शर्मा ने लेखकों को सूचित किया कि डा० मोहन लाल ने गुलेरी की चौथी अप्रकाशित कहानी खोज निकाली है। कहानी का नाम है—"हीरे का हीरा।"

विजय सहगल ने आलेख पर अपनी प्रतिक्रिया में कहा कि यह आवश्यक नहीं कि नयी पीढ़ी के लेखक किसी एक प्रतिष्ठित लेखक की रचनाओं को पैमाना मान कर चलें।

डा० विद्याधर शर्मा गुलेरी ने भाषा और टैक्नीक की दृष्टि से गुलेरी की कहानियों को उच्च ठहराया। उन्होंने खेद व्यक्त किया कि अकादमी ने गुलेरी पर आज तक विशेष रूप से एक पन्ना भी नहीं छापा।

विषय के चयन को लेकर जब चारों तरफ से आक्रमण किए गए तो डा० बंशी राम शर्मा चुप्प न रह पाए। उन्होंने कहा कि गुलेरी का प्रभाव नहीं है तो एक पृष्ठ में यह स्पष्ट लिख देना चाहिए था। इस पर भी सत्येन्द्र शर्मा ने चुटकी लेते हुए कहा कि जब अकादमी ने विषय रखा है तो इसका मतलब है कि प्रभाव स्वीकार किया गया है।

डॉ० राजकुमार ने कहा कि चर्चा मुद्दे या तर्क पर होनी चाहिए। उनका मत था कि केवल कुछ शब्दों के प्रयोग से कहानी आंचलिक नहीं हो जाती। गुलेरी की कहानियों में आंचलिकता हो, ऐसा उन्होंने नहीं माना।

केशव ने अपना नाम तक शोध लेख में ग़लत लिखे व कहे जाने पर आपत्ति की। उन्हें आलेख में कुछ भी उपयोगी नहीं लगा। दीनू कश्यप महज यह कहकर लगभग खामोश हो गए कि चर्चा भटकाव का शिकार हुआ है। उन्हें कुछ ऐसा नहीं लगा जिस पर कमेंट किया जा सके। सत्र की अध्यक्षता डा० बच्चन सिंह ने की।

"गुलेरी की कहानियों में नायक की कल्पना" शीर्षक से दूसरा आलेख डा० बच्चनसिंह ने पढ़ा। ऐसा लगा मानों इस शोध-पत्र को लेखक गण झेलते रहे। इस पर विशेष चर्चा नहीं हुई।

समारोह के अन्त में दो प्रस्ताव पारित किए गए। एक प्रस्ताव में गुलेरी जी पर एक डाक टिकट जारी करने की मांग की गयी। दूसरे में पंजाब तथा हरियाणा में बस यात्रियों की निर्मम हत्या पर गहरा शोक व्यक्त किया गया।

—राजेन्द्र राजन

राजभाषा पुरस्कार समारोह–1987

'राजभाषा अधिनियम 1975' के अनुसरण में हिमाचल प्रदेश प्रशासन में हिन्दीकरण के लिए विभिन्न पग उठाये गए हैं। इसी के अन्तर्गत हिन्दी प्रचलन के प्रोत्साहन के लिए पुरस्कार तथा शील्ड आदि प्रदान करने की व्यवस्था भी है।

सर्व प्रथम वर्ष 1986 में इन पुरस्कारों के लिए सचिवालय निदेशालय तथा जिला स्तर पर हिन्दी का सर्वाधिक तथा सर्वोतम कार्य करने वाले विभागों का निर्धारित प्रणाली द्वारा मूल्यांकन करवाया गया। यह कार्य विभिन्न विभागों के हिन्दी अधिकारियों द्वारा सम्पन्न करवाया और पुरस्कारों की घोषणा की गई।

24 जून, 1987 को हिमाचल प्रदेश सचिवालय के सम्मेलन हाल में एक सादे किन्तु प्रभावशाली समारोह में प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री वीरभद्र सिंह ने प्रथम स्थान प्राप्त विभागों को राजभाषा पुरस्कार प्रदान किये। सचिवालय स्तर पर यह सम्मान 'निर्वाचन विभाग', निदेशालय स्तर पर 'पंचायत विभाग' को प्रदान किये गये। जिला स्तर पर प्रथम आने वाले विभागों को भी शील्डें प्रदान की गईं। हिन्दीकरण में उत्तम कार्य करने के लिए सचिवालय में सामान्य प्रशासन विभाग तथा मुख्य मन्त्री कार्यालय और निदेशालय में सम्पदा निदेशालय को मुख्य मन्त्री द्वारा प्रशस्ति पत्र प्रदान किये गये।

भाषा-संस्कृति विभाग द्वारा सचिवालय और निदेशालय में आरम्भ किये गये हिन्दी-टंकण एवं आशुलिपि प्रशिक्षण के प्रथम बैच के प्रशिक्षणार्थियों को भी इसी अवसर पर प्रमाण-पत्र वितरित किये गये।

माननीय मुख्य मन्त्री ने सम्मान प्राप्त विभागों को बधाई देते हुए अन्य विभागों से भी इसी लगन और निष्ठा से राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वियन के लिए जुट जाने का आग्रह किया। उन्होंने प्रदेश में राजभाषा हिन्दी के पूर्ण कार्यान्वियन के लिए सरकार के निश्चय को दोहराते हुए सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों से आग्रह किया कि वे सरल हिन्दी का प्रयोग करें ताकि राजकाज जनता की समझ में आ सके। हिंदी टंकण आशुलिपिक प्रशिक्षण पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि इस दिशा में और सहायक सामाग्री उपलब्ध कराने की आवश्यकता है।

इससे पूर्व भाषा एवं संस्कृति निदेशक श्रीयुत श्रीनिवास जोशी ने कहा कि सचिवालय तथा निदेशालय में चलाई जा रही हिन्दी टंकण तथा आशुलिपि प्रशिक्षण कक्षाओं में सभी सेवारत लिपिकों को प्रशिक्षित किया जायेगा और जिला स्तर पर भी यह कार्यक्रम चलाए जायेंगे। श्री जोशी ने बताया कि विभाग द्वारा प्रकाशित 'प्रशासनिक शब्द संग्रह' बहुत उपयोगी रहा है। अन्य पुस्तकें शीघ्र ही प्रकाशित जाएंगी। इनमें मुख्य हैं—'पदनाम शब्दावली', 'प्रशासनिक हिन्दी सहायिका' 'प्रशासनिक हिन्दी अंग्रेजी शब्द संग्रह' आदि।

राज्य स्तरीय हिन्दी दिवस समारोह

14 सितम्बर को हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग द्वारा 'राज्य स्तरीय हिन्दी दिवस समारोह' का आयोजन इस वर्ष उना के बचत भवन में किया गया। इस दो दिवसीय समारोह का उद्घाटन जिलाधीश उना श्री राजमणि त्रिपाठी ने ज्योति प्रज्वलित कर किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री त्रिपाठी ने कहा कि प्रदेश सरकार संविधान तथा लोकतान्त्रिक अपेक्षाओं के अनुसार राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास के लिए सजग तथा सतत प्रयत्नशील है।

इससे पूर्व विभागीय अधिकारी श्री जगदीश शर्मा ने राजभाषा हिन्दी के विकास पर प्रकाश डालते हुए सरकार द्वारा प्रदेश में इसके कार्यान्वयन के लिए चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों का विवरण दिया। उन्होंने बताया कि प्रत्येक विभाग में वरिष्ठ अधिकारी को राज-भाषा प्रचालन का कार्य सौंपा गया है, हिमाचल प्रदेश अग्रणी राज्य है जिसने विधान सभा की 'राजभाषा कार्यान्वयन समिति' का गठन किया है जो हिन्दी प्रचालन की देखरेख व इस संबंध में नीति संबंधी निर्णय लेती है। हिन्दी टाईप व आशुलिपि का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। हिन्दी के कार्यसाधक ज्ञान के लिए लघु अवधि प्रशिक्षण आयोजित किये जा रहे हैं। हिन्दी की सहायक पुस्तकों का संकलन प्रकाशन किया जाता है तथा राजकाजी सामग्री का अंग्रेजी से अनुवाद किया जाता है।

इसके उपरान्त हिन्दी कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें प्रदेश के विभिन्न स्थानों से पधारे हिन्दी कवियों में डा० ओम प्रकाश सारस्वत, सी० आर० बी० ललित, चन्द्ररेखा, प्रकाश पन्त, प्रो० चतुरसिंह, पी० सी० के० 'प्रेम', बद्रीसिंह भाटिया, कु० मंजुल रायजादा, स्नेहलता, द्विजेन्द्र द्विज शामिल थे। कुछ अंश देखिए :

कम कवियों की हाजिरी से एक सुविधा रही कि प्रत्येक कवि अपनी चुनी हुई एकाधिक रचनाएं सुना सका और श्रोताओं को उनकी रचनाशीलता के विभिन्न आयामों में सुनने, समझने का मौका मिला। हालांकि प्रत्येक कवि ने कम-से-कम एक नई कविता सुनाई परन्तु फिर भी जिन्हें हिन्दी में गजल कहने का फन आता है। वे अपनी एक-एक गजल सुनाने का लोभ भी नहीं छोड़ सके। ललित, द्विज, चन्द्ररेखा डढ़वाल तथा डॉ० सारस्वत ने अपने-अपने अंदाज में गजलें पेश कीं।

दूसरे दिन 15 अप्रैल को लेखक गोष्ठी का विषय था 'प्रयोगशील हिन्दी काव्य को अज्ञेय का योगदान' प्रमुख पत्र डॉ० अनिल राकेशी ने प्रस्तुत किया। राकेशी ने अपने सारगर्भित आलेख में अज्ञेय के काव्य का विषद विवेचन करते हुए इन्हें प्रयोगशील काव्य का प्रवर्तक सिद्ध किया। उन्होंने कहा कि भाषा व शैली में नये-नये प्रयोगों के माध्यम से हिन्दी साहित्य के विकास में अज्ञेय का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। चर्चा में भाग लेते हुए दैनिक ट्रिब्यून के सहायक सम्पादक श्री विजय सहगल ने कहा कि प्रयोगवादी काव्य प्रवर्तन में अज्ञय जी अग्रणी ही रहे परन्तु पत्रकारिता सहित अनेक विधाओं में भी इनकी प्रयोगधर्मिता स्पष्ट लक्षित होती है। उन्होंने इस संदर्भ में अनेक उदाहरण भी दिये। चर्चा में सर्वश्री हेमराज कौशिक, सी० आर० पी० ललित, शंकरलाल शर्मा, ओम्प्रकाश शान्त व ऋषि वैद ने भी भाग लिया। इस सूत्र की अध्यक्षता करते हुए श्री पी० सी० के० प्रेम ने बताया कि ऐसे साहित्यिक आयोजनों के

माध्यम से विभाग साहित्य समाज का उपकार कर रहा है। उन्होंने लेखकों से आग्रह किया कि वे समाज के प्रति अपने दायित्व को ईमानदारी से निभाएँ।

इस अवसर पर महादेवी वर्मा, देवराज दिनेश तथा फिक्र तौंसवी के निधन पर शोक प्रस्ताव पारित कर श्रद्धांजलि अर्पित की गयी। ●

उषा अनिरुद्ध चित्र सीरीज़ कथा

आपने गतांक में पढ़ा कि श्रीकृष्ण की जिज्ञासा पर नारद मुनि ने अनिरुद्ध के बंदी बनाए जाने की सारी कथा सुना दी थी। उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि अनिरुद्ध बाण के कारागार में बंद है। यह एक रोमांस की कहानी है। वास्तव में उसे बन्दी बनाने वाली बाण की बेटी उषा ही है।

उषा के स्वप्न से लेकर चित्रलेखा द्वारा चित्र बनाकर अनिरुद्ध की पहचान करने और उसे उषा के कक्ष तक पहुंचाने की कहानी श्रीकृष्ण और बलराम ने एक साथ सुनी। अपने सुपुत्र की खोज लगने पर कृष्ण को एक तरह का संतोष मिला। इसी के साथ सारी कहानी की रोचकता पर वह खुलकर हंस दिये और बलराम ने भी उन्हीं के साथ ठहाका लगाया।

हंसी के अवरोह पर कुछ सोचते हुए से बलराम ने कहा, "यह कैसी विचित्र शरारत है? कितनी चतुर लड़की होगी चित्रलेखा, जो उसे इतने विस्मयकारी ढंग से द्वारिका से शोणितपुर स्थित बाण के महल तक पहुंचा गयी कि हम में से किसी को इस बात की भनक तक न लगी। बेटी उषा और अनिरुद्ध को एक साथ देखकर बाण को कितना क्रोध आया होगा इस बात की कल्पना सहज ही की जा सकती है।"

बलराम की ये बातें सुनते हुए ही कृष्ण गम्भीर हो गए। उन्हें अब इस बात का आभास हो गया था कि बाण के साथ युद्ध होना निश्चित है। इसी सोच के साथ उन्होंने कहा, "हमें अपने युववीर को छुड़ाने का रास्ता निकालना होगा। जबकि हमें मालूम है कि वह कहां है और उसे बन्दी बनाने वाला कौन है, ऐसी स्थिति में अब हमें तनिक भी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। यह खेद का विषय है कि बाण ने हमें अपना शत्रु बना लिया है। वह आवश्यक रूप से इसका प्रतिफल भोगेगा। अब हमारे पास इस बात के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं कि बाण को पराजित करके अनिरुद्ध को मुक्त कराया जाए।

आपस में विचार-विमर्श के उपरांत कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न तत्काल भीमकाय गरुड़ पर आसीन होकर द्वारिका से शोणितपुर के लिए प्रस्थान कर गए। पहुंचते ही उन्होंने बाण की नगरी शोणितपुर पर आक्रमण शुरू कर दिया।

बाण को पहले ही मालूम था कि बन्दी पुत्र को छुड़ाने के लिए कृष्ण आएगा ही इसलिए जैसे वह उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। उन तीनों को गरुड़ पर सवार आते देखकर ही उसने अग्निदेव को अपनी ज्वालाएं आकाश की ओर छोड़ने के लिए कहा ताकि वे लोग पृथ्वी पर न उतर सकें। परन्तु ऐसे समय में गरुड़ ने अपनी तीव्र बुद्धि का परिचय दिया। उसने पवित्र नदी गंगा में अपने डैनों को डुबोकर पानी संजोया और सारे नगर पर ठंडे पानी की बौछारें छिड़क दीं। गरुड़ के ऐसा करने से अग्निदेव पराजित हो गए। इसी के साथ बाण के दुष्ट अनुचर भयाक्रांत होकर इधर-उधर दौड़ने लगे।

क्रमशः

शोणितपुर पर हमला करते गरुड़ पर सवार श्रीकृष्ण, बलराम तथा प्रद्युम्न
भूरी सिंह संग्रहालय चंबा में संग्रहीत उषा-अनिरुद्ध सीरीज (1770-1775 ई.) का सोलहवां चित्र

VIPASHA-16 SEPTEMBER-OCTOBER-1987 R.N. 42497/85 PRICE: Rs. 2

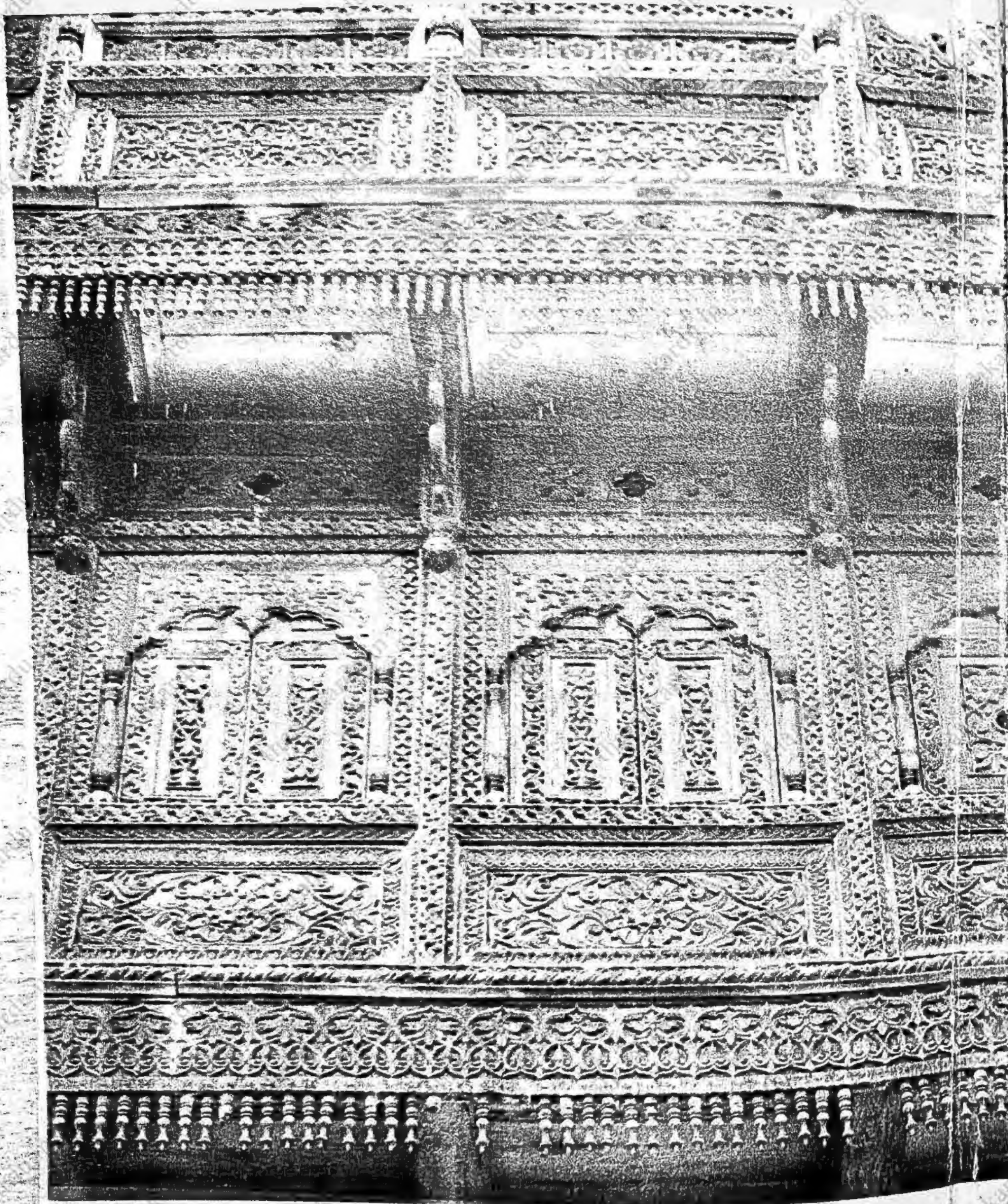

निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, त्रिशूल
शिमला-171003 द्वारा प्रकाशित तथा शांति मुद्रणालय,
गली नं. 11, विश्वास नगर दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित।